गोरखनाथ कृषि दर्पण

(अर्धवार्षिक)

महायोगी गोरखनाथ कृषि विज्ञान केन्द्र

संस्करण- द्वितीय, अंक 2(जुलाई – दिसम्बर 2022)

गोरखनाथ कृषि दर्पण

(अर्धवार्षिक)

संस्थापक एवं संरक्षक

पूज्यनीय गोरक्षपीठाधीश्वर श्री योगी आदित्यनाथ जी महाराज

प्रो. यू. पी. सिंह
उपाध्यक्ष
महायोगी गोरखनाथ कृषि विज्ञान केन्द्र

योगी कमलनाथ जी
सचिव
महायोगी गोरखनाथ कृषि विज्ञान केन्द्र

सम्पादक मण्डल

प्रधान संपादक
विवेक प्रताप सिंह
(वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष)

संपादक
अवनीश कुमार सिंह
(विषय वस्तु विशेषज्ञ–सस्य प्रसार)
अजीत कुमार श्रीवास्तव
(विषय वस्तु विशेषज्ञ–उद्यान)
संदीप प्रकाश उपाध्याय
(विषय वस्तु विशेषज्ञ–मृदा विज्ञान)

संकलन एवं सहयोग
गौरव कुमार सिंह
(कार्यक्रम सहायक –कंप्यूटर)

विषय-सूची

क्रम संख्या	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
1.	**प्राकृतिक खेती : समय की मांग** प्रवीण सिंह, डा. एस.आर. मिश्रा, डॉ. राहुल कुमार सिंह	8-10
2.	**कुक्कुट पालन के क्षेत्र में कड़कनाथ प्रजाति का महत्व** सुनील सिंह, पंकज कुमार गुप्ता, विवेक प्रताप सिंह एवं मो. अबु नैय्यर	11-13
3.	**गन्ने के प्रमुख कीट एवं नियंत्रण** डा. आर. पी. सिंह	14-20
4.	**गन्ने के प्रमुख रोग एवं समेकित प्रबंधन** डा. आर. पी. सिंह, डा. एस. के. गंगवार एवं डा. ए. के. सिंह	21-25
5.	**बदलते जलवायु परिस्थिती में किसानों के लिए समय की माँग है "कैच क्रॉप"** डा. ममता सिंह	26-29
6.	**शरद ऋतु में नवजात बछड़े/बछड़ी का उचित देखभाल एवं आहार प्रबंधन** पंकज कुमार गुप्ता, सुनील सिंह, विवेक प्रताप सिंह, सुधांशु वर्मा एवं जितेंद्र कुमार कुशवाहा	30-33
7.	**गन्ने के साथ अन्तर्वर्ती फसलः आय वृद्धि एवं टिकाऊपन का उत्तम साधन** डॉ. आर. पी. सिंह, डॉ. एस.के. गंगवार, डॉ. डी.के. तिवारी एवं डॉ. पी.के. मिश्रा	34-37
8.	**कृषि उत्पादक संगठन (FPO) के माध्यम से किसानो को प्रोत्साहन** अभिनव सिंह, राजीव कुमार दोहरे, रितेश सिंह, वीरेंद्र प्रताप, अनुराग शंकर सिंह, यश कुमार सिंह	38-40
9.	**जनवरी महीने में ये उपाय अपनाकर आम का उत्पादन बढ़ा सकते हैं किसान** डा. एल. सी. वर्मा, डॉ जितेंद्र कुमार कुशवाहा एवं डा. फूल कुमारी	41-43

10. **जायद के मौसम में हरे चारे की उन्नति खेती** 44-48
डॉ विवेक प्रताप सिंह एवं अवनीश कुमार सिंह

11. **वर्ष भर हरे चारे के लिये नेपियर घास की खेती** 49-52
डॉ विवेक प्रताप सिंह एवं अवनीश कुमार सिंह

12. **मत्स्य आहार भंडारणएंव गुणवत्ता** 53-56
डा. ज्ञानदीप गुप्ता, डा. एल. सी. वर्मा एवं प्रो. ए. पी. राव

13. **फसल अवशेष जलाने से नष्ट होती है भूमि की उर्वराशक्ति** 57-61
डा. एल. सी. वर्मा, डा. चंदन सिंह एवं लाल पंकल सिंह

14. **एकीकृत कृषि प्रणाली से होंगे किसान समृद्ध** 62-63
श्री आशीष कुमार सिंह

15. **गाजर की विपुल उत्पादन तकनीकी** 64-68
डॉ. राहुल कुमार सिंह, डॉ. नरेन्द्र रघुबंशी, श्री प्रकाश सिंह, डॉ. अमितेश कुमार सिंह, एवं डॉ. मनीष पाण्डेय

16. **मिर्च उत्पादन तकनीकी** 69-72
जितेन्द्र कुमार कुशवाहा, चन्दन सिंह एवं ज्ञानदीप गुप्ता

17. **भिण्डी की वैज्ञानिक खेती** 73-77
जितेन्द्र कुमार कुशवाहा, चन्दन सिंह एवं लाल पंकज सिंह

18. **हल्दी के औषधीय गुण** 78-79
डॉ. राहुल कुमार सिंह, डॉ. नरेन्द्र रघुबंशी, डॉ. नवीन कुमार सिंह एवं डॉ. प्रतीक्षा सिंह

परिचय

कृषि विज्ञान केन्द्र की स्थापना कृषि एवं सम्बन्धित विषयों की नवीनतम तकनीकों के हस्तान्तरण एवं प्रसार द्वारा जनपद के सर्वांगीण विकास हेतु गोरखनाथ सेवा संस्थान के नियंत्रण में गोरक्षपीठाधीश्वर पूज्यनीय महंत श्री योगी आदित्यनाथ जी द्वारा की गई।

इस केन्द्र का शिलान्यास 23 अक्टूबर 2016 को माननीय केन्द्रीय कृषि मंत्री, कृषि एवं किसान मंत्रालय, भारत सरकार श्री राधा मोहन सिंह जी द्वारा किया गया। यह केन्द्र भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद-कृषि प्रौद्योगिक अनुसंधान संस्थान द्वारा वित्त पोषित है। यह केन्द्र गोरखनाथ की पवित्र धरती पर स्थापित होने ई वजह से इस केन्द्र का पूरा नाम महायोगी गोरखनाथ कृषि विज्ञान केन्द्र रखा गया। यह केन्द्र गोरखपुर जनपद से 35 कि०मी० दूरी पर पीपीगंज रेलवे स्टेशन से 08 कि०मी० दूरी पर स्थित है। पीपीगंज गोरखपुर-सोनौली मार्ग पर स्थित है।

महायोगी गोरखनाथ कृषि विज्ञान केन्द्र जनपद की कृषि सम्बन्धी आवश्यकतो की पूर्ति हेतु कृषकों की सेवा में तत्पर रहेगा। केन्द्र के समस्त तकनीकी हस्तान्तरण कार्यक्रम "करके सीखों" एवं देखकर विश्वास करो के सिद्धान्त पर संचालित किया जा रहा है तथा प्रौद्योगिकी में निहित वास्तविक दक्षता को सिखाने पर बल दिया जाता है।

यह केन्द्र एक ऐसी वैज्ञानिक संस्था के रूप में किसानों के बीच ऊभर आयेगी जहाँ किसानों एवं कृषि कार्य में संलग्न महिलाओं एवं ग्रामीण युवकों/युवतियों को व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जाना शुरू हो चूका है। प्रशिक्षण मुख्यतः फसलोत्पादन, पौध सुरक्षा, गृह विज्ञान, पशुपालन, उद्यानिकी, कृषि अभियान्त्रिकी, तथा अनेक कृषि सम्बंधित विषयों में दिया जाता है। संस्था द्वारा किसानों के ही खेतों पर किसानों को शामिल करते हुए वैज्ञानिकों की देख-रेख में उन्नत तकनीकी का परिक्षण किया जाता है तथा कृषकों एवं विस्तार कार्यकर्ताओं के समक्ष आधुनिकतम वैज्ञानिक तकनीक का अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन किया जाता है। कृषि

विज्ञान केन्द्र वैज्ञानिकों, विषय वस्तु विशेषज्ञों , विस्तार कार्यकर्ताओं तथा कृषकों की संयुक्त सहभागिता से कार्य करता है। इस केन्द्र में प्रशासनिक भवन, प्रशिक्षण हॉल, पुस्तकालय, फसलों, सब्जियों एवं चारा की उन्नतशील तकनीकी का प्रदर्शन तकनीकी पार्क में किया गया है। इसके अतिरिक्त किसानों हेतु वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन, मौनपालन, मशरुम उत्पादन पशु चॉकलेट व पोषक वाटिका प्रदर्शन इकाई स्थापित है।

प्राकृतिक खेती : समय की मांग

प्रवीण सिंह[1], डा. एस.आर. मिश्रा[2], डॉ. राहुल कुमार सिंह[3]

1शोध छात्र, 2एसोसिएट प्रोफेसर, कृषि मौसम विज्ञान विभाग

आ. न. दे. कृ एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या

3 विषय वस्तु विशेषज्ञ—कृषि प्रसार, कृषि विज्ञान केन्द्र, वाराणसी

प्राकृतिक खेती जैसा कि हम सब जानते हैं परंपरा से भी जुड़ा हुआ है और यह आज के समय की मांग भी बन चुका है। खेती के आधुनिक तौर-तरीकों को अपनाकर हम अपनी खाद्य जरूरतों को पूरा करने लायक हो तो गए हैं मगर रसायनों के अंधाधुंध प्रयोग के कारण हमने धरती मां को बीमार भी कर दिया है। बीमार होती मिट्टी और बढ़ते प्रदूषण में आज पूरी दुनिया को चिंता में डाल दिया है मगर भारत के पास इस समस्या का एक बेहतरीन निदान है और इस पर काम भी बहुत तेजी से चल रहा है। प्राकृतिक खेती जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि यह तकनीक पूरी तरीके से प्राकृतिक संसाधनों और कुदरती सामग्री पर आधारित है। यह खेती की ऐसी तकनीक है जो मिट्टी की भौतिक संरचना में सुधार करने के साथ-साथ उसकी उर्वरता में भी वृद्धि करता है। व फसलों को जलवायु परिवर्तन के मार का सामना करने के काबिल भी बनाता है। प्राकृतिक खेती के निम्नलिखित लाभ हैं-

1. लागत कम लगती है।
2. पानी की बचत होती है।
3. उत्पादन भी बढ़ जाता है।

प्राकृतिक खेती की इस तकनीक में एक देसी गाय से 30 एकड़ जमीन के लिए खाद तैयार हो जाती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्राकृतिक खेती मुख्यतः देसी गाय पर आधारित खेती की एक तकनीक है जो जमीन को सेहतमंद बनाने के सिद्धांत पर कार्य करती है क्योंकि पौधे अपना सारा पोषण मिट्टी से ही लेते हैं। मिट्टी जितनी ताकतवर होगी उपज उतनी ही ज्यादा और गुणवत्ता वाली होगी। दरअसल रसायन ने ना सिर्फ मिट्टी को कमजोर किया है बल्कि फसलों को भी जहरीला बना दिया है। कई बार विदेशी खरीदार भी मानक से ज्यादा कीटनाशक पाए जाने के कारण हमारी फसलों को खरीदने से मना कर देते हैं। इसका कहीं ना कहीं दुष्प्रभाव हमारी कृषि क्षेत्र को उठाना पड़ता है। यह रसायन सिंचाई के जल के साथ ही भूमिगत जल में जा मिलते हैं और उसे प्रदूषित करते हैं। यही वजह है कि आज प्राकृतिक खेती समय की मांग के साथ साथ जरूरत भी है। यही कारण था कि प्राचीन समय में हमारे पूर्वज प्रकृति द्वारा प्राप्त प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग कर प्राकृतिक खेती करते थे। मिट्टी में 16 तरह के पोषक तत्व होते हैं जो फसलों की अच्छी पैदावार बढ़ाने के लिए जरूरी है और यदि इनमें से एक भी तत्व की कमी हो जाए तो बाकी बचे 15 तत्वों का बहुत ज्यादा फायदा फसल को नहीं मिल पाता है। देसी गाय के गोबर में यह सभी तत्व प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। गाय के गोबर और मूत्र की गंध केचुओ की संख्या बढ़ाने में मददगार होती है। जैसा कि हम जानते हैं कि केंचुए किसान मित्र माने जाते हैं। दूसरी ओर प्राकृतिक खेती के लिए गहरी जुताई की भी आवश्यकता

नहीं पड़ती है और सिंचाई भी पौधों से कुछ ही दूरी पर की जाती है जिसमें सिर्फ 10 फ़ीसदी ही पानी की आवश्यकता पड़ती है। दूर से पानी देने की वजह से जड़ों की लंबाई के साथ ही साथ तनों की मोटाई व पौधों की लंबाई में भी इजाफा होता है। इसमें जो उत्पादन होता है उसने शुरुआत में तो थोड़ी गिरावट होती है मगर जहां मिट्टी की उर्वरता बढ़ जाती है तो उत्पादन में 15 से 20ः तक की बढ़त देखी गई है। प्राकृतिक खेती में पौधों की दिशा उत्तर दक्षिण होती है इस वजह से पौधों को भरपूर मात्रा में सूरज की ऊर्जा व रोशनी मिल पाती है इससे पौधे उसी तरीके से अपना शरीर निर्माण कर पाते हैं व कीट लगने की आशंका भी कम हो जाती है, साथ ही साथ पौधों में पोषक तत्व भी संतुलित मात्रा में इकट्ठे हो जाते हैं। खेती की इस विधि में देशी बीजों की भी अहम भूमिका होती है देशी बीज पोषक तत्व कम लेते हैं और पैदावार भी ज्यादा देते हैं।

भारतवर्ष में प्राकृतिक खेती का जनक डॉ. सुभाष पालेकर को माना जाता है। इन्होंने सन 1972 में सर्वप्रथम अपने फार्म पर रासायनिक खेती पर काम करना शुरू किया किंतु बाद में प्राकृतिक खेती का विचार इनके मन में आया। 1972 से 1985 तक रासायनिक विधि से खेती करने पर इन्होंने पाया कि प्रारंभ में तो पैदावार बढ़ी किंतु बाद के वर्षो में इसमें कमी देखी गई। वही दूसरी ओर आदिवासियों के साथ काम करते हुए इन्होंने पाया की जंगलों में पौधों के विकास के लिए किसी बाहरी तत्व की जरूरत नहीं होती बल्कि पैदावार के लिए जरूरी संसाधन इन्हें प्रकृति से ही सरलता से प्राप्त हो जाते हैं। तत्पश्चात 6 वर्ष की कठोर परिश्रम के उपरांत बिना रसायनों वाली तकनीक जीरो बजट नेचुरल फार्मिंग इजाद की, जिसके लिए इन्हीं 2016 में भारत सरकार द्वारा श्पदम श्रीश् पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

भारत सरकार द्वारा भी परंपरागत कृषि विकास योजना के अंतर्गत भारतीय कृषि पद्धति के नाम से एक उप योजना तैयार की है जिसके तहत किसान भाइयों को 3 साल के लिए प्रति हेक्टेयर रू 12200 की आर्थिक सहायता दी जाती है। इस उपयोजना में अब तक 4, 09, 400 हेक्टेयर क्षेत्र कवर हो चुका है और 8 राज्यों के लिए रु 4981 लाख जारी किए जा चुके हैं। उत्तर प्रदेश सरकार ने भी 35 जिलों की लगभग 98760 हेक्टेयर जमीन को प्राकृतिक खेती के लिए प्रस्तावित किया है जिस पर लगभग रु. 19772 लाख का खर्च अनुमानित है तथा जिससे लगभग 51, 450 किसान लाभान्वित होंगे। अकेले प्रयागराज जिले में लगभग 1000 हेक्टेयर से भी ज्यादा जमीन को प्राकृतिक कृषि पद्धति के अंतर्गत चुना गया है जिससे लगभग 913 किसानों को फायदा पहुंचने का अनुमान है।

आज प्राकृतिक खेती की लोकप्रियता लगातार बढ़ती जा रही हैं। खास तौर पर छोटे और सीमांत किसानों के बीच क्योंकि ये उनकी जेब के अनुकूल है। ऐसे किसानों के पास आय के बहुत कम साधन होते हैं और खेती में पड़ने वाली भारी लागत इनकी कमर तोड़ देती है। इस खेती में उर्वरकों और कीटनाशकों पर इन्हें जरा भी खर्च नहीं करना पड़ता है इसलिए खेती की यह तकनीक इनके लिए किसी वरदान से कम नहीं है। प्राकृतिक खेती के माध्यम से किसान भरपूर उपज लेता है व उनकी गुणवत्ता भी रासायनिक खेती की अपेक्षा काफी अच्छी होती है और उपज का बाजार भाव भी अच्छा मिलता है।

प्राकृतिक खाद दो तरीकों से बनाई जाती है पहला तरीका यह है कि एक देशी गाय का 24 घंटा का गोबर जो लगभग 10kg होगा, 24 घंटे में इकट्ठा किया हुआ मूत्र 8 से 10 लीटर लगभग, 1.5 से 2kg गुड व 1.5 से 2kg गुड व 1.5 से 2kg दाल का बेसन (किसी भी दाल का) और पेड़ के नीचे से एक मुट्ठी मिट्टी को लेकर

एक प्लास्टिक के ड्रम में 180 लीटर पानी के साथ मिलाकर सुबह शाम पांच 5-5 मिनट एक लकड़ी के डंडे की सहायता से क्लॉक वाइज मिलाते हैं। तत्पश्चात इस मिश्रण को एक छायादार जगह पर रख देते हैं। 4 से 6 दिन में यह खाद तैयार हो जाएगा जोकि 1 एकड़ खेत के लिए पर्याप्त होगा इस प्रकार 30 दिन में 30 एकड़ क्षेत्र के लिए खाद तैयार हो जाएगी। दूसरा तरीका धन जीवामृत है। इसमें 100 किलोग्राम गाय का गोबर सुखा कर बारी कर लेते हैं। साथ ही 24 घंटे का गोमूत्र, 1.5 kg गुड, 1.5kg बेसन और एक मुट्ठी मिट्टी मिलाकर छायादार जगह पर ढक कर रख देते हैं तथा इसे यूरिया की तरह 6 से 7 महीने तक कभी भी इस्तेमाल कर सकते हैं। इसी तरह कीटनाशक भी गोबर, गोमूत्र, पौधे के पत्ते, तंबाकू, लहसुन और लाल मिर्च आदि के मिश्रण से तैयार किए जाते हैं।

प्रायः यह देखा गया है कि जब हम प्राकृतिक खेती करते हैं तो इसके द्वारा सूक्ष्मजीव जो जड़ों या मिट्टी में रहते हैं उनके द्वारा कई सूक्ष्म तत्व पौधों को प्राप्त होते हैं। जिसकी वजह से पौधे स्वस्थ और सुदृढ़ होते हैं तथा उन पर कीटों का भी कम से कम प्रभाव पड़ता है।

रासायनिक खेती में शंकर व जेनेटिकली मॉडिफाइड बीजों का उत्पादन देशी बीजों से ज्यादा होता है मगर प्राकृतिक खेती में देशी बीजों का उत्पादन संकर बीजों व GM बीजों की अपेक्षा ज्यादा होता है। यह भी देखा गया है कि देशी बीजों में पोषण मूल्य, औषधि मूल्य रासायनिक खेती से पैदा शंकर पौधों की अपेक्षा कई गुना ज्यादा होता है अर्थात मानव पोषण की दृष्टि से भी देशी बीजों से पैदा प्राकृतिक फसलें सर्वोत्तम हैं। देशी गाय पालन करने वाले किसानों के लिए प्राकृतिक खेती और भी आसान है क्योंकि यह विधि पशु अवशिष्ट के इस्तेमाल पर निर्भर है। जैसा कि हम जानते हैं कि किसानों को अक्सर मौसम की मार भी झेलनी पड़ती है। ऐसे में इन सब चुनौतियों का समाधान प्राकृतिक खेती को अपनाकर ही किया जा सकता है। प्राकृतिक खेती में फसलें मौसम की मार और जलवायु में हो रहे बदलाव को आसानी से सहन कर लेती हैं। अर्थात यह कहना गलत ना होगा कि प्रकृति में उपस्थित सभी जैविक और अजैविक घटकों का समन्वय ही प्राकृतिक खेती को सफल बनाता है।

प्राकृतिक खेती अब समय की मांग भी है और जरूरत भी। बेहतर स्वास्थ्य और संतुलित पर्यावरण के लिए किसान तेजी सें ZBNF अपना रहे हैं। यह रासायनिक खेती की तुलना में कम खर्चीला और बेहतर मुनाफा देने में सक्षम है। प्राकृतिक खेती में प्रकृति अपने हिसाब से खेती के हर पहलू को नियंत्रित करती है जिसमें बाहर से कुछ शामिल नहीं करना होता है। प्राकृतिक खेती की यह संकल्पना है कि जहां खेत है वही उसकी पोषण की व्यवस्था हो और वहीं पर ही धरती को समृद्ध बनाने की व्यवस्था भी हो साथ ही साथ किसान का उत्पादन ठीक से हो उसके लिए प्रकृत खुद को अच्छी तरीके से प्रबंधित कर रही है इसका भी ध्यान देना होगा। इसमें मुख्य भूमिका पशु-पक्षी, वृक्ष, सूक्ष्म जीवों और जैविक-अजैविक घटकों की होती है। इस तरह से देखा जाए तो प्राकृतिक खेती व उत्पाद मौजूदा समय की मांग है। प्राकृतिक कृषि करके एक वह किसान जहाँ ZBNF के लक्ष्य को हासिल कर सकते हैं वहीं दूसरी ओर इससे मिट्टी और पर्यावरण को नुकसान से बचा सकते हैं।

कुक्कुट पालन के क्षेत्र में कड़कनाथ प्रजाति का महत्व

सुनील सिंह[1], पंकज कुमार गुप्ता[2], विवेक प्रताप सिंह[3] एवं मो. अबु नैय्यर[2]

1 कृषि विज्ञान केंद्र, धौरा, उन्नाव (उ.प्र.)

2 इंटीग्रल विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

3 कृषि विज्ञान केंद्र-द्वितीय, गोरखपुर (उ.प्र.)

कड़कनाथ भारत मे पायी जाने वाली कुक्कुट की एक महत्वपूर्ण और अत्यंत पुरानी प्रजाति है। कड़कनाथ को 'कालामसी' (काला माँस मुर्गा) कहते है। यह प्रजाति मूलतः मध्यप्रदेश के झबुआ और धार जिलों व गुजरात और राजस्थान मे भी पायी जाती है। यह प्रजाति मध्यप्रदेश के आदिवासी बरेला, भिलाला, में लम्बे समय से पाली जा रही है। कड़कनाथ के माँस मे "मिलेनिन" नामक रंगद्रव्य होता है जिससे इसका मांस काला होता है और इसे **कामोद्दीपक** माना जाता है। इसकी त्वचा, चोच, टांग, पंजा और तलवा गहरे भूरे रंग का जबकि जीभ गहरे भूरे रंग अथवा हल्के काले रंग की होती है। कलगी, ललरी, लोलकी हल्के से गहरे भूरे अथवा बैगनी रंग के होते है।

कड़कनाथ प्रजाति की मुख्य विशेषताए:-

- इसका मांस काले रंग का होता है, तथा पंख काले व नील रंग का होता है।
- प्रथम दिन चूजे का वजन लगभग 30-35 ग्राम होता है।
- 50-60 दिनों बाद शाररिक वजन 1.2-1.5 किग्रा होता है।
- वयस्क नर व मादा का शाररिक भार क्रमशः 1.5-2.0 तथा 1.0 -1.5 किग्रा तक होता है।
- वार्षिक अंडे का उत्पादन लगभग 110 से 125 तक होता है, तथा अंडे का भार 35-48 ग्राम तक होता है।
- इस प्रजाति में मांस की प्रतिशत मात्रा 67-68 तक होती है।

कड़कनाथ प्रजाति की किस्मे:

कड़कनाथ प्रजाति की मुख्य रूप से 3 किस्मे है

1. **जेट ब्लैक-** नर और मादा दोनों पूर्ण काले होते है।
2. **पैन्सिल-** इस किस्म मे नर और मादा के पंख काले होते है जबकि गर्दन के पास सफ़ेद पंख होते है।
3. **गोल्डेन-** इस किस्म के नर और मादा काले रंग के होते है जबकि पंख सुनहरा रंग का होता है।

माँस का पोषक-मूल्य :-

कड़कनाथ का माँस विशिष्ट स्वाद वाला होता है। माँस मे अन्य कुक्कुट प्रजाति (18-20%) की तुलना मे प्रचुर प्रोटीन (25%) पायी जाती है। साथ ही यह उच्च गुणवत्ता वाला प्रोटीन है। हमारे शरीर के लिए आवश्यक 8 अमीनो एसिड इसके प्रोटीन मे पाये जाते है। इसके अलावा इसमे कूल 18 अमीनो एसिड पाये जाते है। सामान्य ब्रोइलर के माँस मे वसा की मात्रा 13- 25% तक होती है जबकि कड़कनाथ मे इसकी मात्रा बहुत कम (0.73-1.05%) होती है। साथ ही साथ इसके मांस मे कोलेस्ट्राल 180 मिलीग्राम/100 ग्राम खाद्य भाग मे पायी जाती है। जो की हृदय एवं उच्चरक्तचाप के रोगियों के लिए निरापद होगा। इसके माँस मे विटामिन B1, B2, B6, B12, C और E होता है जो मानव शरीर की दुर्बलता को दूर करता है और रोगप्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है। इन्ही गुणों के कारण उत्तर प्रदेश के जिलों में कड़कनाथ 600-800 रुपये/ किग्रा मार्केट मे बिकता है, जबकि महाराष्ट्र व मध्य प्रदेश में 1200 से 1500 रुपये / किग्रा तक बिकता है।

अंडे का पोषक मूल्यः-

कड़कनाथ प्रजाति के अंडे में विशेष गुण पाया जाता है. इसमें अन्य देसी प्रजातियों के तुलना में न्यूनतम वसा व कोलेस्ट्राल पाया जाता है तथा प्रोटीन की मात्रा 25 प्रतिशत तक, जो कि अन्य प्रजातियों (18-20 प्रतिशत) से उच्च पाया जाता है. इशी गुणों के कारण उत्तर प्रदेश के जिलों में कड़कनाथ के अंडे 15-20

रुपये/ अंडा मार्केट मे बिकता है, जबकि महाराष्ट्र व मध्य प्रदेश में 100 से 120 रुपये /अंडा तक बिकता है|.

आवास का प्रबन्धनः-

कड़कनाथ एक विशिष्ट और अत्यंत पुरानी देसी प्रजाति है, जो मध्य प्रदेश के जंगलों में पाए जाते है, इसलिए इसका रख रखाव बहुत आसान है| वैसे तो कड़कनाथ को खुला आवास प्रणाली एवं अर्धसघन प्रणाली मे भी रखा जा सकता है परन्तु व्यावसायिक रूप से इन प्रणालियों मे प्रति पक्षी आय बहुत कम आती है| अतः व्यावसायिक स्तर पर कड़कनाथ को सघन प्रणाली (डीप लिटर प्रणाली) मे रखते है| सघन आवास का आधार 1.5 फीट जमीन से नीचे और 1.0 फीट जमीन से ऊपर होनी चाहिए ताकि बाहरी पानी का रिसाव नही हो| सघन आवास की लंबाई (आवश्यकतानुसार 30-40 फीट) की दिशा पूर्व-पश्चिम रखते है जिससे सीधे धूप से पक्षी बच सके और चौड़ाई 30 फीट से ज्यादा नहीं हो ताकि शुद्ध वायु का आवागमन हो सके| आवास की बाहरी दीवार की ऊंचाई 10 फीट रखते है जिसमे आधार से 2 फीट की दीवार फिर 8 फीट जाली रखते है और छत के बीच की उचाई 12 फीट रखते है| छत से 3 फीट का छज्झा बाहर निकालना चाहिए जिससे बरसात का पानी अन्दर नहीं आये| किसान के बजट के अनुसार छत पुआल, नारियल के पत्तों, एस्बेस्टस, फाइबर या टीन के चादर की हो सकती है परंतु एस्बेस्टस आरामदेह और टिकाऊपन के हिसाब से उतम है| आवास का फर्श पक्का होना चाहिए जिससे फर्श सूखा रहे और चूहे, साँप जैसे बाह्य परभक्षी का खतरा टल सके| इस प्रणाली मे पक्षियों को सहप्राकृतिक जैसे आवास मे रखा जाता है| यह कड़कनाथ पालन करने का बढ़िया तरीका है जिसमे पक्षियों को ज्यादा से ज्यादा संख्या मे पाल सकते है|

आहार का प्रबन्धनः-

ब्यवसायिक स्तर पर कड़कनाथ पालन में होने वाले व्यय का 60-70 प्रतिशत केवल आहार मे लगता है| अतः यह जरूरी है की कम खर्चे मे उच्च्य गुणवत्ता वाला आहार तैयार किया जाये| कड़कनाथ के आहार मे कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, खनिज लवण और विटामिन की संतुलित मात्रा रहे इसके लिए 0-8 सप्ताह, 9-17 सप्ताह तथा 18 -72 सप्ताह तक के पक्षी के चूजो के लिए क्रमशः 23 प्रतिशत, 22 प्रतिशत तथा 20 प्रतिशत का प्रोटीन सहित आहार की आवश्यकता होती है|

स्वास्थ्य प्रबंधनः-

कड़कनाथ अत्यंत गर्मी और सर्दी की जलवायु मे भी भली भाँति जीवित रहते है| यद्यपि कड़कनाथ नस्ल और नस्लों से अत्यधिक कठोर और बीमारियों के लिए प्रतिरोधी है परंतु रानीखेत, गम्बोरो और मरेक्स बीमारी के मामले पाये जा चुके है| अतः इन बिमारियों से बचाव हेतु समय समय पर टीकाकरण करवाना चाहिए. इसके आलावा कृमिनाशक 10, 13, 16, और 19 सप्ताह की आयु पर पाईप्रेजीन हेक्साहायड्रेट 50 मिली प्रति 100 पक्षियों को सुबह के पानी मे देते है|

उपरोक्त गुणों तथा महत्वपूर्ण जानकारी के आधार पर कृषक खेती किसानी के साथ कड़कनाथ प्रजाति के कुक्कुट पालन के माध्यम से अधिक आय प्राप्त कर सकता है|

गन्ने के प्रमुख कीट एवं नियंत्रण

डा. आर. पी. सिंह

वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र, पश्चिम चम्पारण बिहार—II

गन्ना लम्बी अवधि की फसल है, जिसकी एक या दो पेड़ी भी ली जाती है जिससे बिभिन्न प्रकार के कीटों के लिए लगातार आहार एवं आश्रय का उचित वातावरण मिलने के कारण उनका जीवन चक्र आसानी से पूरा होता रहता है। एक दर्जन से अधिक ऐसे कीट हैं जो गन्ने की बढ़वार को बिभिन्न अवस्थाओं में अधिक नुकसान पहुंचाते हैं, जिनका समय से नियंत्रण कर गन्ने की अच्छी पैदावार प्राप्त की जा सकती है। प्रस्तुत लेख में गन्ने के प्रमुख कीटों की पहचान एवं समुचित नियंत्रण की जानकारी दी जा रही है जो किसानो तथा प्रसार कार्यकर्ताओं के लिए लाभदायक सिद्ध होगी :-

1.दीमकः दीमक के श्रमिक कीट ही हानिकारक होते हैं। दीमक प्रायः बोई गयी गन्ने की पोरियों के कटे सिरों अथवा आखों के पास छोटे छिद्र बनाकर प्रवेश कर आंतरिक तन्तुओं को खाकर उनमें मिटटी भर देते हैं। दीमक से ग्रसित पौधों की बाहरी पत्तियाँ पहले सूखती हैं तथा धीरे-धीरे अन्दर की पत्तियां भी सूख जाती हैं और गन्ना नष्ट हो जाता है। यदि ऐसे प्रकोपित पौधे को खींचा जाय तो पूरा पौधा आसानी से उखड़ जाता है।

नियंत्रणः

गन्ना बोते समय क्लोरान्त्रानीलीप्रोल 0.4% जी.आर. 4-7.5 किग्रा.ध्एकड़ की दर से नाली में प्रयोग करना चाहिए। खड़ी फसल में दीमक का प्रकोप दिखाई देने पर क्लोरपायरीफास 16% + अल्फासायपरमेथ्रिन 1% की 0.85-1.0 मिली / ली. पानी की दर से या थायामेंथोक्जाम 25% डब्लू.जी. 1 ग्राम / 4 ली. पानी की दर से मिलाकर छिड़काव करें।

2. गन्ने में कन्सुआ / अंकुर बेधक (अर्ली शूट बोरर): इस कीट की सूडी मटमैली, सिर गहरे भूरे रंग की, पीठ पर पांच बैगनी रंग की धारियाँ होती हैं। अण्डों से नवजात सूडी निकलकर तने के अन्दर छेद करके घुस जाती है। इसके खाने के बाद बीच की गोफ (पीहिका) सूखकर पीली हो जाती है, जिसे 'मृत गोफ' कहते हैं। प्रभावित गोफ को खींचने पर आसानी से हाथ में आ जाता है।

नियंत्रणः

खेत में 'ट्रैस मल्चिंग' करना चाहिए एवं समय-समय पर सिचाई करते रहना चाहिए। गन्ने के साथ धनियाँ, लहसुन, प्याज, आलू, मूँग जैसी सह-फसली खेती कर कीट के प्रकोप को कम किया जा सकता है, परन्तु गेहूँ व् मक्का की सह-फसली खेती न करें। गन्ना बोते समय फिप्रोनिल 0.3 जी. की 20-25 किग्रा. मात्रा

प्रति हेक्टेयर की दर से नाली में प्रयोग करना चाहिए। खड़ी फसल में प्रकोप दिखाई देने पर ल्युफेन्युरान 5.4% ई.सी. 1.2 मिली / ली. पानी या नोवाल्युरान 10% ई.सी. 1 मिली / ली. पानी की दर से तर छिड़काव करें।

3. गन्ने में जड़ध्मूल बेधकः

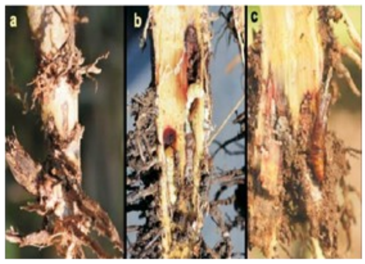

इस कीट का प्रकोप बारिस के बाद अधिक (जुलाई-नवंबर) होता है। इस कीट की सूड़ी का प्रकोप छोटे बड़े दोनों ही पौधों पर पाया जाता है। सूड़ी जमीन से लगे हुए गन्ने के भाग में छिद्र बनाकर घुस जाती है तथा मृतसार (डेड हार्ट) बनाती है। इस कीट के आक्रमण से पत्तियां पीली पड़ जाती है तथा बढ़वार प्रभावित होती है। प्रकोप से बाद में पूरा पौधा ही सूख जाता है।

नियंत्रणः

बुआई के समय जैविक कीटनाशी ब्युबेरिया बेसियाना 1.15% डब्लू. पी. या मेटाराइजियम एनीसोप्ली1.15% डब्लू.पी. पावडर की 2.0 किग्रा. मात्रा 50-60 किग्रा. सड़ी गोबर की खाद में मिलाकर खेत तैयार करते समय शाम को प्रयोग कर मिटटी में मिलाये अथवा गन्ना बोते समय नालियों में प्रयोग करें । गन्ना बोते समय क्लोरान्त्रानीलीप्रोल 0.4% जी.आर. 4-7.5 किग्रा. / एकड़ की दर से नाली में प्रयोग करना चाहिए। खड़ी फसल में प्रकोप दिखाई देने पर क्लोरपायरीफास 16% + अल्फासायपरमेथ्रिन 1% की 0.85-1.0 मिली. / ली. पानी की दर से या क्लोरान्त्रानीलीप्रोल 8.8% + लैम्डासाईहैलोथ्रिन 17.5% एस. सी. 1.0 मिली./ 2-3 ली. पानी की दर से तर छिड़काव करें।

4. गन्ने में तना बेधकध्स्तम्भ छिद्रकः

इस कीट का प्रकोप अगस्त से फरवरी तक होता है। गिडार मटमैले रंग का, 25-30 मिमी. लम्बा तथा शरीर पर कत्थई रंग की 5 धारियाँ पाई जाती हैं। इस कीट के प्रकोप से ग्रसित पौधों में मृत केन्द्र बनता है और उसके आधार पर कई छिद्र दिखाई देते हैं। पत्तियों के नीचे पारियों पर भी कई छिद्र दिखाई देते हैं जिनसे कीट ताजे व् गीले मल निकालते हैं। ग्रसित गन्ने को लम्बाई में फाड़कर देखने पर उसमें लाल गैलरी दिखाई देती है जिससे सड़ी हुई दुर्गन्ध आती है।

नियंत्रण :

गन्ना बोते समय फिप्रोनिल 0.3 जी. या कार्टप हाईड्रोक्लोराइड 4 जी. की 20-25 किग्रा. मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से नाली में प्रयोग करना चाहिए अथवा खड़ी फसल में दिखाई देने पर भी प्रयोग करना चाहिए। फसल में प्रकोप दिखाई देने पर ईथियान 40% + सायपरमेथ्रिन 5% ई.सी. या प्रोफेनोफास 40% + सायपरमेथ्रिन 4% ई.सी. या ट्राईजोफास 35% + डेल्टामेथ्रिन 1% की 1 मिली. / ली. पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

5.गन्ने में पोरी बेधक/इन्टरनोड बेधकः

इस कीट का प्रकोप जुलाई से अक्टूबर तक अधिक होता है। यह कीट केवल पोरी को ही क्षति पहुँचाता है। इसलिए इसे पोरी बेधक कीट के नाम से जाना जाता है । इस कीट की सूड़ियाँ गन्ने के कोमल व मुलायम भाग को क्षतिग्रस्त कर पोरी में घुस कर खाती है जिससे मृतसार (डेड हार्ट) बनता है।

नियंत्रणः

स्वस्थ गन्नों की बुआई करनी चाहिए, छिद्र युक्त बीज का प्रयोग नहीं करना चाहिए। गन्ना बोते समय फिप्रोनिल 0.3 जी. की 20-25 किग्रा. मात्रा प्रति हेक्टेयर अथवा क्लोरान्त्रानीलीप्रोल 0.4% जी.आर.4-7.5 किग्रा./एकड़ की दर से नाली में प्रयोग करना चाहिए अथवा खड़ी फसल में दिखाई देने पर भी प्रयोग करना चाहिए । फसल में प्रकोप दिखाई देने पर ईथियान 40% + सायपरमेथ्रिन 5% ई.सी. या ल्युफेन्युरान 5.4% ई.सी. 1.2 मिली. / ली. पानी या नोवाल्युरान 10% ई.सी. 1 मिली. / ली. पानी या फ्लूवालीनेट 25% ई.सी. की 1 मिली. / 2.5-3.0 ली. पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए ।

6.गन्ने में चोटी बेधक :

इस कीट का प्रकोप मार्च से अक्टूबर तक होता है। इस कीट की पहली व् दूसरी पीढ़ी बरसात से पहले तथा तीसरी व् चैथी पीढ़ी बरसात के बाद हमला करती है। इसका प्रकोप मार्च से ही शुरू हो जाता है। इस कीट की नवजात सूड़ियाँ पत्तियों की मध्य शिरा में सुरंग बनाकर प्रवेश करती हैं और धीरे-धीरे बारीक सुरंग बनाते हुए गोफ में पहुँच जाती हैं। जहाँ यह बढ़वार बिदु को खाकर नष्ट कर देती हैं। इस कीट की तीसरी व् चैथी पीढ़ी जून-जुलाई से लेकर सितम्बर-अक्टूबर तक अधिक हानि पहुंचती है। इसके प्रकोप से ऊपर की पोरियों में आँखे (गाठें) अंकुरित होने लगती हैं, जिससे अगोला शाखादार बन जाता है जिसे “बंची टाप” भी कहते हैं।

नियंत्रण :

इस कीट के प्रकोप को कम करने के लिए गन्ना बोते समय फिप्रोनिल 0.3 जी. की 20-25 किग्रा. मात्रा प्रति हेक्टेयर अथवा क्लोरान्त्रानीलीप्रोल 0.4% जी.आर. 4-7.5 किग्रा.ध्एकड़ की दर से नाली में प्रयोग करना चाहिए अथवा खड़ी फसल में दिखाई देने पर भी प्रयोग करना चाहिए। चोटी बेधक कीट के पहली व् दूसरी पीढ़ी की सूड़ियों का नियंत्रण अति आवश्यक है, इसके लिए प्रभावित गन्ने को निकाल कर नष्ट कर देना चाहिए तथा अप्रैल के अंत या मई माह के प्रथम सप्ताह में गन्ने की खड़ी फसल में जड़ क्षेत्र में क्लोरान्त्रानीलीप्रोल 0.4% जी.आर. 4-7.5 किग्रा./एकड़ की दर या क्लोरान्त्रानीलीप्रोल 8.8% . लैम्डासाईहैलोथ्रिन 17.5% एस. सी. 1.0 मिली./ 2-3 ली. पानी की दर से तर छिड़काव करें।

7.गन्ने का प्लासी बोरर :

इस कीट का प्रकोप अप्रैल से अक्टूबर तक होता है। प्राथमिक प्रकोप में नवजात सूड़ियाँ सामूहिक अवस्था में 20-50 की झुंडों में पत्तियों को खाते हुए लीफ शीथ से होकर मुख्य तना में गन्ने के ऊपर की तीसरी से पांचवीं पोरी में शुरू में खाती हैं। खाने के बाद क्षतिग्रस्त पोरी के घुसने के छिद्र से लाल रंग का अवशेष (मल) पदार्थ निकलता रहता है। कीट के प्रकोप से अगोला मुरझाकर सूख जाता है एवं बढ़वार रूक जाती है तथा क्षतिग्रस्त पोरी उसी जगह से आसानी से टूट जाती है जहाँ से घुसती है।

नियंत्रण :

गन्ना बोते समय फिप्रोनिल 0.3 जी. या कार्टप हाईड्रोक्लोराइड 4 जी. की 20-25 किग्रा. मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से अवश्य प्रयोग करना चाहिए। खड़ी फसल में प्रकोप दिखाई देने पर इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. की 1 मिली./ ली. पानी या डायाफेनथ्युरान 50% डब्लू पी. 1 ग्राम / ली. पानी या क्लोरान्त्रानीलीप्रोल 8.8%. लैम्डासाईहैलोथ्रिन 17.5% एस. सी. 1.0 मिली. / 2-3 ली. पानी की दर से घोल बनाकर 2 छिड़काव 12-15 दिनों के अंतराल पर करना चाहिए।

8.गन्ने का पायरिला :

इस कीट का प्रकोप अप्रैल से नवंबर तक होता है। व्यस्क कीट भूरे रंग, चोंचनुमा तथा मादा के पीछे बैगनी पैड होता है। इस कीट के शिशु एवं वयस्क दोनों ही गन्ने की पत्तियों की निचली सतह पर बैठ कर रस चूसकर हानि पहुंचाते हैं, जिसके कारण पत्तियाँ पीली पड़कर मुरझाने लगती हैं एवं बढ़वार प्रभावित होती है।

नियंत्रण :

गन्ने की सूखी पत्तियों को जिन पर पायरिला के अंडे हों, अप्रैल-मई माह में निकालकर नष्ट कर देना चाहिए। यदि खेतों में परजीवियों की संख्या अधिक हो तो रासायनिक कीटनाशी का प्रयोग न करें। यदि खेत में परजीवियों की संख्या नगण्य हो तो इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. की 1 मिली. / ली. पानी या डायाफेनथ्युरान 50% डब्लू पी. 1 ग्राम / ली. पानी या थायोमेथोक्जाम 12.6% + लैम्डासाईहैलोथ्रिन 9.5% एस.सी. 1 मिली. / 2 ली. पानी की दर से 2 छिड़काव 12-15 दिनों के अंतराल पर करें।

9.गन्ने का गुरूदासपुर बेधक :

इस कीट का प्रकोप जुलाई से अक्टूबर तक रहता है। मादा कीट अंडे झुंडों में शीथ में देती है। अंडे झुण्ड में, 3-4 पंक्तियों में एक दुसरे के ऊपर मछली के छिलकों के समान होते हैं। सूड़ियाँ ऊपर से दूसरी या तीसरी पारियों में आँख के रास्ते प्रवेश कर अन्दर ही अन्दर स्प्रिंग की तरह घुमावदार (गन्ने को चक्राकार काटती है) काटना शुरू कर देती है, जिससे गन्ना अन्दर से खोखला हो जाता है। पहले बीच की पत्तियां व् बाद में पूरी चोटी सूख जाती है और तेज हवा के झोंके से टूटकर अलग हो जाता है। एक पोरी में 40-50 सूड़ियाँ तक पाई जाती हैं।

नियंत्रण :

गन्ना बोते समय फिप्रोनिल 0.3 जी. या कार्टप हाईड्रोक्लोराइड 4 जी. की 20-25 किग्रा. मात्रा प्रति हेक्टेयर अथवा क्लोरान्त्रानीलीप्रोल 0.4% जी.आर. 4-7.5 किग्रा. / एकड़ की दर से अवश्य प्रयोग करना चाहिए। क्लोरान्त्रानीलीप्रोल 8.8% + लैम्डासाईहैलोथ्रिन 17.5ः एस. सी. 1.0 मिली. / 2-3 ली. पानी या ल्युफेन्युरान 5.4% ई.सी. 1.2 मिली / ली. पानी या नोवाल्युरान 10% ई.सी. 1 मिली / ली. पानी की दर से घोल बनाकर 2 छिड़काव 12-15 दिनों के अंतराल पर करना चाहिए।

10. गन्ने का काला चिकटाध्ब्लैक बग :

इस कीट का प्रकोप अप्रैल से जून तक पेड़ी फसल में ही अधिक होता है। इस कीट के शिशु और वयस्क दोनों ही गोफ के अन्दर रस चूसते हैं जिसके कारण पत्तियां पीली एवं गहरे भूरे रंग के या बैगनी रंग के धब्बेयुक्त हो जाती हैं। पत्तियों की अगली नोंक व् किनारा सूखने लगता है और कभी-कभी पूरा गन्ना सूख जाता है। जिस खेत की साफ-सफाई नहीं होती है उसमें इस कीट का प्रकोप अधिक होता है।

नियंत्रण :

प्रकोपित फसल की पेड़ी नहीं लेनी चाहिए । स्पाईनेटोरम 11.7% एस.सी 1 मिली. / 2 ली. पानी की दर से सायंकाल छिड़काव करना चाहिए। पेड़ी फसल में इस कीट की रोकथाम के लिए मध्य मई तक क्लोरान्त्रानीलीप्रोल 8.8% + लैम्डासाईहैलोथ्रिन 17.5%एस.सी. 1.0 मिली. / 2-3 ली. पानी की दर से घोल बनाकर इस तरह छिड़काव करें कि कीटनाशक गोफ के अन्दर तक पहुंचकर छिपे हुए शिशु एवं प्रौढ़ नष्ट हो जाँय । यदि यह कीट पूरी तरह से नष्ट न हुआ हो तो 25-30 दिन बाद दूसरा छिड़काव करना चाहिए।

11. गन्ने में सफेद गिडार / सफेद लट :

इस कीट का आक्रमण रेतीली जमीनों में जुलाई से अक्टूबर तक रहता है। मादा कीट जमीन के अन्दर अंडे देती है इनसे निकली सूड़ियाँ जो अर्ध विराम आकार की सफेद मटमैले रंग की होती हैं जो पौधे की जड़ को व् जमीन के अन्दर के भाग को खाकर फसल को क्षति पहुंचाती हैं। इस कीट के प्रकोप से पौधे सूखकर गिर जाते हैं। इस कीट की वर्ष में एक ही पीढ़ी होती है।

नियंत्रण :

खेत की गहरी जुताई करके फसलों एवं खरपतवारों के अवशेषों को नष्ट कर देना चाहिए। गन्ना बोते समय फिप्रोनिल 0.3 जी. की 20-25 किग्रा. मात्रा प्रति हेक्टेयर अथवा क्लोरान्त्रानीलीप्रोल 0.4% जी.आर. 4-7.5 किग्रा. / एकड़ की दर से नाली में प्रयोग करना चाहिए। खड़ी फसल में प्रकोप दिखाई देने पर इमिडाक्लोप्रिड 40% + फिप्रोनिल 40% डब्लू. जी. 1 ग्राम / ली. पानी या क्लोरपायरीफास 16% + अल्फासायपरमेथ्रिन 1% की 0.85-1.0 मिली. / ली. पानी की दर से मिलाकर छिड़काव करें।

12. गन्ने सफेद मक्खी :

यह कीट अगस्त से अक्टूबर तक आक्रमण करता है। सूखे तथा बाढ़ अवस्थाओं में इस कीट का प्रकोप ज्यादा होता है। इस कीट से ग्रसित पत्तियां पीली पड़ जाती हैं जो बाद में सूख जाती हैं। इस कीट के अधिक प्रकोप से पत्तियों पर सूटी मोल्ड विकसित हो जाती है क्योंकि यह कीट चिपचिपा द्रव का स्राव करता है। ऐसी दशा में प्रकाश संश्लेषण क्रिया बाधित हो जाती है जिससे पौध की बढ़वार रूक जाती है।

नियंत्रण :

उचित जल निकास एवं सिचाई की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। नत्रजन युक्त उर्वरकों की संतुलित मात्रा का प्रयोग करना चाहिए। शुरुआती प्रकोप दिखाई देने पर पत्तियों को काटकर जला देना चाहिए। इस कीट की रोकथाम के लिए इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. की 1 मिली. / ली. पानी या डायाफेनथ्युरान 50% डब्लू पी. 1 ग्राम / ली. पानी या डायाफेनथ्युरान 47% + बाईफेनथ्रिन 9.4% एस.सी. 1 मिली. / ली. पानी या फेनप्रोपाथ्रिन 30% ई.सी. 1 मिली./ 3-4 ली. पानी की दर से 2 छिड़काव 12-15 दिनों के अंतराल पर करें।

13. गन्ने में थ्रिप्स/ चूरडा :

यह कीट अप्रैल से जून तक आक्रमण करता है। काले रंग के बहुत छोटे व् पतले आकार के होते हैं जो पौधों की गोफ में छुपकर रस चूसते हैं। ग्रसित पत्तों की नोंक सूखकर अन्दर की ओर मुड़ जाती है। ग्रसित पौधों के पत्तों की नोंक सूख जाती है। जिससे पौध की बढ़वार रूक जाती है।

नियंत्रण :

गर्मी के मौसम में समय पर सिचाई कर देने से कीट की रोकथाम हो जाती है।
इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. की 1 मिली. / ली. पानी या डायाफेनथ्युरान 50% डब्लू पी. 1 ग्राम / ली. पानी या डायाफेनथ्युरान 47% +   बाईफेनथ्रिन 9.4% एस.सी.1 मिली. / ली. पानी की दर से 2 छिड़काव 12-15 दिनों के अंतराल पर करें।

14. गन्ने में शल्क कीट/ स्केल कीट :

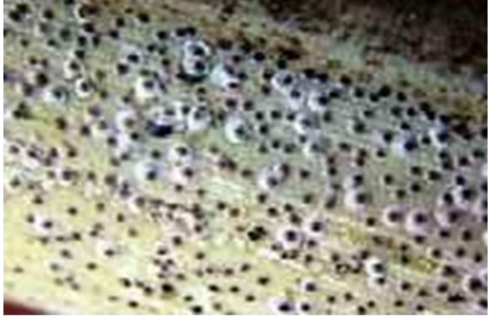

यह कीट जुलाई से फरवरी तक आक्रमण करता है। इस कीट का प्रकोप गन्ने में पोरी बनने के साथ ही प्रारंभ हो जाता है। इस कीट के शिशु पोरियों पर झुण्ड के रूप में चिपक जाते हैं व बाद में अपने शरीर पर मोम की तह जमा लेते हैं। शिशु पोरियों से रस चूसकर नुकसान पहुंचाते हैं। प्रकोप से पौध की बढ़वार रूक जाती है, पोरियाँ सिकुड़ जाती हैं जो बाद में सूखने लगती हैं एवं उपज पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

नियंत्रण :

गन्ना बोने से पहले टुकड़ों को इमिडाक्लोप्रिड 48% एफ. एस. के 3 मिली. / ली. पानी या इमिडाक्लोप्रिड 70% डब्लू. एस. की 3 ग्राम / ली. पानी की दर से तैयार घोल में उपचारित करें। इस कीट की रोकथाम के

लिए क्लोरान्त्रानीलीप्रोल 8.8% + लैम्डासाईहैलोथ्रिन 17.5% एस.सी. 1.0 मिली. / 2-3 ली. पानी या थायोमेथोक्जाम 12.6% + लैम्डासाईहैलोथ्रिन 9.5% एस. सी. 1 मिली. / 2 ली. पानी की दर से 2 छिड़काव 12-15 दिनों के अंतराल पर करें।

15. टिड्डा कीट :

यह कीट मुख्य रूप से जुलाई से सितम्बर तक आक्रमण करता है। इस कीट का शिशु तथा प्रौढ़ पौधों के पत्तों को किनारे से खाते हैं। अधिक प्रकोप की दशा में पत्तों की कधी शिराएँ व् कभी-कभी पतला तना ही शेष रह जाता है। फसल छोटी रह जाती है, उपज अधिक प्रभावित होती है।

नियंत्रण :

खेत को खरपतवारों से मुक्त रखें तथा उचित जलनिकास का प्रबंध रखें। टिड्डियों के नियंत्रण के लिए बेन्थिओकर्ब 80% डब्लू.पी 150 ग्राम मात्रा 500 ली. पानी में बूफ्रोफेजिन 25% एस.सी 1.5-2.0 मिली. / ली. पानी की दर से या लैम्डासाईहलोथ्रिन 5% ई.सी. की 400 मिली. 500 ली. पानी में घोलकर छिड़काव करें।

16. गन्ने में लाल माईट (अष्ट पदी):

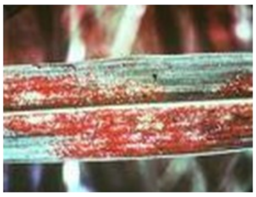

माईट कीट गन्ने की फसल पर अप्रैल से जून के मौसम में आक्रमण करता है। इस कीट के द्वारा रस चूसने से पत्तों पर लाल लम्बी धारियां पड़ जाती हैं। कभी-2 सूखे की अवस्था में अष्टपदी पीली माईट का भी प्रकोप हो जाता है। ग्रसित फसल के पत्तों पर सफेद गोल व मोती के आकार के धब्बे लम्बाई लिए हुए कतारों में दिखाई पड़ते हैं ।

नियंत्रणः

प्रभावित पत्तियों को एकत्र कर जला देना चाहिए । डायकोफाल 18.5% ई.सी. 2.7 मिली. / ली. पानी या मिल्बीमेक्तिन 1% ई.सी. 1 मिली. / ली. पानी या हेक्सीथियाजोक्स 5.45% एस.सी. 0.48 मिली. / ली. पानी या फेनपायराक्सीमेंट 5% ई.सी. 1 मिली. / ली. पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें । उपर्युक्त दवाओं का दूसरा छिड़काव 15-20 दिन बाद करना चाहिए।

17. ऊनी माहूँ कीटः

शिशु एवं वयस्क दोनों पत्तियों से रस चूसकर नुकसान पहुंचाते हैं । इसके प्रकोप से खेत में सफेद चादर सी दिखाई देती है। यह कीट मीठे द्रब्य का स्राव करता है, जिसके ऊपर काली फफूंद उग आती है। ऐसी दशा में प्रकश संशलेषण क्रिया बाधित होती है जिससे पौधे की बढ़वार प्रभावित होती है।

नियंत्रण :

गन्ना बुआई की पेयर्ड रो सिस्टम को अपनाना चाहिए। नत्रजन युक्त उर्वरकों की अधिक मात्रा प्रयोग न करें। इस कीट की रोकथाम के लिए डायाफेनथ्युरान 47% + बाईफेनथ्रिन 9.4% एस.सी. 1 मिली. / ली. पानी या क्लोरान्त्रानीलीप्रोल 8.8% + लैम्डासाईहैलोथ्रिन 17.5% एस.सी. 1.0 मिली. / 2-3 ली. पानी की दर से 2 छिड़काव 12-15 दिनों के अंतराल पर करें ।

गन्ने के प्रमुख रोग एवं समेकित प्रबंधन

डा. आर. पी. सिंह1, डा. एस. के. गंगवार2 एवं डा. ए. के. सिंह3

1वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र, पश्चिम चम्पारण बिहार– II

2वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र, पश्चिम चम्पारण बिहार– II

3वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र, पूर्वी चम्पारण बिहार– II

भारत में शर्करा के मुख्य स्रोत के रूप में गन्ने की खेती अति प्राचीन काल से होती आयी है। गन्ने की फसल लम्बी अवधि की होने के कारण रोगों के बाहुल्य की सम्भावनाअधिक होती है। रोगों द्वारा कभी कम हानि होती है तो कभी-कभी परकोप अधिक होने के कारण पूरी फसल नष्ट हो जाती है। अपने देश में कृषि पारिस्थितिकी की भिन्नता के कारण रोगों की प्रमुखता क्षेत्रानुसार रहती है। इसलिए प्रमुख रोगों का प्रबन्धन करना आवश्यक है। प्रस्तुत लेख में गन्ने के प्रमुख रोगों की पहचान एवं प्रबंधन का जिक्र किया जा रहा है जो किसानो तथा प्रसार कार्य कर्ताओं के लिए अत्यंत उपयोगी सावित होगी :-

गन्ने का लाल सडन रोग

यह एक बीजजनित एवं गन्ने का सबसे भयंकर रोग है, कैंसर भी कहते हैं। यह फफूंद के द्वारा होता है। इसका प्रकोप जुलाई से फसल के अंत तक होता है। इस रोग के लक्षण तने और पत्तियों पर शर्करा संश्लेष्ण के समय दिखाई देते हैं। सर्व प्रथम ऊपर से तीसरी पत्ती या चैथी पत्ती सूखती है, बाद में सभी पत्तियां शीर्ष से मुरझाकर सूख जाती हैं । गन्ना आसानी से टूट जाता है। गन्ना चीरने पर गूदा (ऊतक) लाल तथा चैड़ाई में (मज्जा के बीच) सफेद चकत्तेध्धारियाँ लिए होता है। एल्कोहलध्सिरके जैसी गन्ध आती है।

समेकित प्रबंधन :

उचित जल निकास वाले खेतों का चयन करना चाहिए। रोग लगने पर तीन साल का फसल चक्र अपनाना चाहिए। रोग ग्रस्त फसल की पेड़ी नही लेनी चाहिए। गन्ने का बीज हमेशा स्वस्थ एवं प्रमाणित पौधशाला से लेना चाहिए। रोग रहित टुकड़ों का प्रयोग बीज के लिए करना चाहिए। रोग रहित पौध अवशेषों को एकत्र करके जला देना चाहिए, यदि खेत में रोग ग्रसित पौध दिखाई दे तो उखाड़कर जला दें या जमीन में दबा दें। खेतों में पड़े रोगों से ग्रसित पौध अवशेषों पर थायोफानेटमिथाइल 70% डब्लू. पी. या थायोफानेटमिथाइल 45% + पयराक्लोस्ट्रोबीन 5% एफ. एस. की 2.5 ग्राम मात्रा प्रति ली. पानी के घोल में पी.जी.पी.आर. स्यूडोमोनास की 5.10 ग्राम मात्रा / लीटर पानी की दर से घोल मिलाकर छिड़काव करके रोग प्रसार को कम किया जा सकता है। बीज के लिए उपयुक्त गन्ने को नम गर्म शोधन मशीन से 54 डिग्री से. पर 1 घंटा तक उपचारित करें अथवा गन्ने की बुआई करने से पहले टुकड़ों को थायोफानेटमिथाइल 45%+

पयराक्लोस्ट्रोबीन 5% एफ. एस. की 2.5 ग्राम मात्रा प्रति ली. पानी के घोल में में 15 मिनट तक शोधित करके बुआई का कार्य करना चाहिए। बीज शोधन करने से गन्ने का जमाव अच्छा होने के साथ-साथ कल्लों की संख्या, गन्नों की संख्या, प्रति गन्नों का वजन, लम्बाई, चैड़ाई तथा उपज में बढ़ोत्तरी होती है। गन्ने के टुकड़ों का शोधन ट्राईकोडर्मा हार्जियेनम की 25 ग्राम / ली. के घोल से करें तथा ट्राईकोडर्मा हार्जियेनम कल्चर को सड़ी गोबर की खाद / प्रेसमड में तैयार कर 200 किलोग्राम / हे. की दर से फरो में गन्नों के टुकड़ों के नीचे डालकर बुआई करें और कल्ले निकलते समय ट्राईकोडर्मा हार्जियेनम की 25-50 ग्राम / ली. पानी में घोल बनाकर छिडकाव करने से लाल सडन रोग को रोकने के साथ गन्ने की बढ़वार में मदद मिलती है। खेत में रोग के लक्षण दिखाई देने पर रोग के प्रसार व प्रभाव को कम करने के लिए अजक्सीस्ट्रोबिन 18.2%+ डाईफेनोकोनाजोल 11.4% एस.सी. की 1 मिली / ली. पानी की दर से घोल बनाकर 2-3 छिड़काव 12-15 दिनों के अन्तराल पर करें।

गन्ने का कंडुआ रोग

यह रोग कवक के द्वारा होता है। इस रोग का प्रकोप अप्रैल से जून तथा अक्टूबर से फरवरी तक होता है। रोग ग्रस्त गन्ने के अगोले में से पतली, नुकीली, चाबुकनुमा डंडी सरीखी रचना निकलती है, जो काले पावडर सरीखी रचना से ढकी होती है। यह रचना पतली, सफेद चमकदार झिल्ली से ढकी होती है जो हवा के झोकों से ही फट जाती है और पावडर बिखरकर खेत में फैल जाता हैं। इस रोग के कारण गन्ने पतले, कभी-2 अधिक लम्बे भी हो जाते हैं। यह रोग रोपड़ के दूसरे व् तीसरे माह बाद दिखाई देने लगता है। इस रोग का प्रसार हवा के माध्यम से अधिक होता है।

समेकित प्रबंधन :

रोग रोधी किस्मों का चुनाव करके ही बुआई करनी चाहिए। रोग ग्रस्त गन्नों का बीज के रूप में प्रयोग नहीं करना चाहिए। जिस खेत में गन्ने की बुआई की जानी हो उसकी ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई अवश्य करें। रोगी पौधों को उखाडकर नष्ट कर देना चाहिए। कम से कम 3 वर्ष का फसल चक्र अपनाना चाहिए। फसल-चक्र में हरी खाद लेना श्रेयस्कर माना गया है क्योंकि ऐसी फसल लेने से मृदा में सूक्ष्मजीवियों की संख्या बढ जाती है जो रोगजनक के फैलाव को कम करते हैं। गन्ने की दो पंक्तियों के बीच अरहर की सहफसली खेती करने से रोग के फैलाव व् संक्रमण में कमी आती है। गन्ने की बुआई से पूर्व भूमि शोधन कार्य ट्राईकोडर्मा विरिडी पाउडर की 10 किग्रा. मात्रा को 200-250 किग्रा. सड़ी गोबर खाद में तैयारकर प्रति हे. खेत की अंतिम जुताई के समय प्रयोग करें। बीज गन्ने को नम-गर्म शोधन मशीन (50 डिग्री से. पर 1 घण्टे) से उपचारित करके बोने से इस रोग के संक्रमण को काफी कम किया जा सकता है। कंडुआ रोग से बचाव हेतु गन्ने के बीज का शोधन कार्बोक्सिन 75% चूर्ण या कार्बोक्सिन 37.5% थायरम 37.5% + 2-2.5 ग्राम / ली. पानी या कार्बोक्सिन 17.5%+ थायरम 17.5% 2 मिली. / ली. पानी की दर से तैयार घोल में 10 मिनट और 5 मिनट तक मरक्यूरिक क्लोराइड (1 मिली. / ली. पानी) या फार्मलीन (10 मिली. / ली. पानी) से उपचारित करके 2 घंटे तक नम कपड़े से ढकने के बाद बुआई का कार्य करना चाहिए।

गन्ने का लालधारी रोग

यह रोग जीवाणु के द्वारा होता है। जून से वर्षा समाप्ति तक इसका प्रकोप अधिक होता है। पत्तियों पर पीली धारियाँ व् जल.सिक्त धब्बे उत्पन्न होते हैं जो बाद में लाल रंग में परिवर्तित हो जाते हैं। धारियाँ पूरी पत्ती पर या मध्य में हो सकती हैं। इसकी निचली सतह पर सफेद चूर्ण पाया जाता है। रोग ग्रस्त गन्ना धीरे-धीरे सूख जाता है। तने के आंतरिक ऊतकों में लाल रंग की धारियाँ पड़ जाती हैं। इस रोग का प्रसार हवा, बारिस तथा प्रभावित टुकड़ों के माध्यम से अधिक होता है।

समेकित प्रबंधन :

रोग रोधी किस्मों का चुनाव करके ही बुआई करनी चाहिए। रोग ग्रस्त गन्नों का बीज के रूप में प्रयोग नहीं करना चाहिए। जिस खेत में गन्ने की बुआई की जानी हो उसकी ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई अवश्य करें। रोगी ग्रसित पौधों को सावधानी पूर्वक उखाडकर जला देना चाहिए। स्यूडोमोनास फ्लोरिसेन्स 2.5 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से 100 किग्रा गोबर की खाद में मिलाकर प्रयोग करना चाहिए। फसल में रोग के लक्षण दिखाई देने पर कापर आक्सीक्लोराइड 2.5 ग्राम / ली. पानी की दर से घोल बनाकर 10 दिन के अन्तराल पर 2-3 छिड़काव करें।

गन्ने का उकठा रोग

यह रोग कवक के द्वारा होता है। इसका प्रकोप अक्टूबर-नवंबर से फसल के अंत तक होता है। इसमें जड़ भी लाल हो जाती है। रोगग्रस्त गन्ने सूखने लगते हैं तथा पीले पड़ जाते हैं, गोभ की पत्तियां पीली पड़ कर ढीली हो जाती हैं और सूख जाती हैं। रोग ग्रस्त गन्नों की बढ़वार रूक जाती है तथा गन्नों की पोरियाँ सिकुड़ जाती हैं। गूदा मटमैला भूरा रंग लिए होता है और पौधा सूखने लगता है। प्रभावित गन्ना गाँठ से सरलता से नहीं टूटता है। इसमें सिरके जैसी गांध नहीं आती है। तना अंदर से खोखला व हल्का हो जाता है। ग्रस्त गन्नों के आन्तरिक ऊतकों में लालिमायुक्त भूरे स्थान बन जाते हैं। इस रोग का प्रसार प्रभावित मृदा, गन्ने के टुकड़ों, सिंचाई पानी तथा जड़ छिद्रक दीमक, सूत्रकृमि आदि से ग्रस्त होने पर भी अधिक होता है।

समेकित प्रबंधन :

रोग ग्रस्त गन्नों का बीज के रूप में प्रयोग नहीं करना चाहिए। जिस खेत में गन्ने की बुआई की जानी हो उसकी ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई अवश्य करें। रोग ग्रस्त गन्ने की पेड़ी न रखें। कम से कम 2-3 वर्ष का फसल चक्र अपनाना चाहिए। गन्ने की बुआई से पूर्व भूमि शोधन कार्य ट्राईकोडर्मा पाउडर की 10 किग्रा. मात्रा को 200-250 किग्रा. सड़ी गोबर खाद में तैयारकर प्रति हे. खेत की अन्तिमजुताई के समय प्रयोग करें। रोग के प्रबंधन हेतु बोरेक्स की 15 किग्रा. मात्रा प्रति हे. अवश्य प्रयोग करें। शरदकालीन गन्ने के साथ राई या धनियाँ की सह फसल लेने से भी इस रोग का प्रभाव काफी कम हो जाता है। बीज गन्ने को नम-गर्म वायु (54 डिग्री. से. पर 2.5 घण्टे) या गर्म जल (50 डिग्री. से. पर 2 घण्टे) से उपचारित करके बोने से इस रोग के संक्रमण को काफी कम किया जा सकता है। गन्ने के बीज का शोधन कार्बोक्सिन 75% चूर्ण या कार्बोक्सिन 37.5% + थायरम 37.5% 2-2.5 ग्राम/ ली. पानी या कार्बोक्सिन 17.5% + थायरम 17.5% 2 मिली./ ली. पानी की दर से या

बोरिक एसिड 2 ग्राम + ट्राईकोडर्मा पाउडर 5-10 ग्राम / लीटर पानी की दर से तैयार घोल में 10 मिनट उपचारित करके बुआई का कार्य करना चाहिए।

गन्ने में पोक्कहा बोईंग रोग

पोक्कहा बोईंग का प्रकोप गन्ने की फसल पर देखा जा रहा है। जून माह से सितम्बर के बीच गन्ने की फसल में पोक्का बोइंग रोग का असर शुरु हो जाता है। यह एक फफूंदी जनित रोग है जिसका प्रकोप वर्षा ऋतु में सर्वाधिक होता है । इस रोग की तीन अवस्थाएं होती हैं। रोग की प्रारम्भिक अवस्था में अगौले की पत्तियों पर नीचे की ओर जहां पत्ती तने से जुड़ती है, वहां सफेद पीले रंग के धब्बे दिखाई देते है, जो बाद में लाल भूरे रंग के हो जाते हैं। दूसरी अवस्था में रोग की चपेट में आकर पत्ती वहां से सड़कर और टूटकर गिर जाती है। रोग की अधिकता होने पर अगौले की सारी पत्तियां आपस मे मुड़कर एक दूसरे से उलझ जाती है और सड़कर गिरने लगती हैं। रोग की तीसरी अवस्था में पोरी का ऊपरी हिस्सा चाकू से काटे गये के सामान दिखाई देता है और कभी-2 अगौला एक ठूंठ की तरह दिखाई देता है। इससे फसल की बढ़वार रुक जाती है और उपज में भारी कमी दिखाई देती है। 20-30 सेन्टीग्रेड तापमान, 70-80% आपेक्षिक आर्द्रता, बदली या फुहार वाली बारिश इस रोग के प्रसार के लिये सहायक परिस्थितियाँ हैं। किसान इस रोग को चोटी बेधक (टॉप बोरर) कीट का प्रकोप समझते हैं, दुकानदार उन्हें कीटनाशी दे देता है, जिससे उन्हें कोई फायदा नहीं होता है।

समेकित प्रबंधन :

पोक्कहा बोईंग फफूंद जनित रोग है और इसका फैलाव हवा के माध्यम से होता है। इसके नियंत्रण के लिए वर्षाकाल से ही किसानो को सजग रहने की आवश्यकता है। लक्षण दिखाई देने पर कापर आक्सीक्लोराइड 3 ग्राम /ली. पानी की दर से घोल बनाकर 15 दिनों के अंतराल पर 2-3 बार छिड़काव करके रोग को रोका जा सकता है।

गन्ने में घासी प्ररोह रोग

यह रोग फाइटोप्लाज्मा के द्वारा होता है। रोग ग्रस्त पौधों में पतले-पतले कल्ले निकल आते हैं जिससे गन्ने का थान घास जैसा दिखाई देने लगता है साथ ही पत्तियों में क्लोरोफिल की मात्रा कम हो जाती है और पत्तियां सफेद, पीली या हल्की हरी हो जाती हैं ।इसलिए इसे एल्बिनो नाम दिया गया है ।रोग ग्रसित पौधों में गन्ना नही बनता है या 1-2 गन्ने ही बन पाते हैं और वे भी अविकसित रहते हैं। इस रोग का प्रसार माहूँ, लीफहापर कीट के द्वारा होता है।

समेकित प्रबंधन :

रोग प्रतिरोधी प्रजातियों का चयन करें, गन्ने के टुकड़ो को गर्म जल उपचार (50 डिग्री. सेंटी.पर घंटे) करके ही बुआई का कार्य करें। खेतों में रोग ग्रसित पौध दिखाई देने पर निकाल कर नष्ट कर दें। रोग ग्रस्त पौधों से पेडी न लें। कीटों के नियंत्रण हेतु इमिडाक्लोप्रिड 17.8% एस.एल. की 1 मिली./ ली. पानी या डायाफेनथ्युरान 50%

डब्लू पी. 1 ग्राम / ली. पानी या डायाफेनथ्युरान 47%+ बाईफेनथ्रिन 9.4% एस.सी. 1 मिली./ली. पानी या फेनप्रोपाथ्रिन 30% ई.सी. 1 मिली./ 3-4 ली. पानी या क्लोरान्त्रानीलीप्रोल8.8% + लैम्डासाईहैलोथ्रिन 17.5% एस. सी. 1.0 मिली./ 2-3 ली. पानी या थायोमेथोक्जाम 12.6%+ लैम्डासाईहैलोथ्रिन 9.5% एस. सी. 1 मिली./ 2 ली. पानी या इनडाक्साकार्ब 14.5% + एसीटामिप्रिड 7.7% ई.सी 1मिलि. / ली. पानी की दर से 2 छिड़काव 12-15 दिनों के अंतराल पर करें। रोग की रोकथाम के लिए टेरामाइसिन या एक्रोमाइसिन या टेट्रासाईक्लीन 1 ग्राम/ 8-10 ली. पानी या लीडरमाईसिन 1 ग्राम/ ली. पानी की दर से घोला बनाकर छिड़कव करें।

गन्ने में पेड़ी कुंठनध्येड़ी का बौनापन रोग

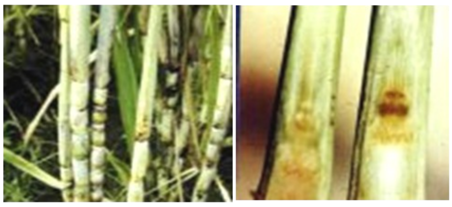

यह रोग एक बीजाणु लीफसोनिया जाईली द्वारा होता है। बिना प्रजाति बदले एवं लगातार एक ही प्रजाति बोने से तथा पेडी लेने से यह रोग अधिक बढ़ता है। रोग ग्रस्त तनों को फाड़कर देखने पर गाठों के अन्दर संबह्वी ऊतकों का मलिनकरण दिखाई देता है। पोरियों की लम्बाई कम, गन्ने पतले व छोटे रह जाते हैं जिससे उपज घट जाती है। इस रोग का प्रसार रोग ग्रसित गन्नों, व कर्षण क्रियाओं के द्वारा होता है।

समेकित प्रबंधन :

स्वस्थ पौधों का चयन कर बुआई करें। खेत को खरपतवारो से मुक्त रखें। रोग प्रतिरोधी प्रजातियों का चयन करें, गन्ने के टुकड़ो को गर्म जल उपचार (50 डिग्री. सेंटी. पर 2 घंटे) करके ही बुआई का कार्य करें। गन्ना काटने वाले यंत्र को डिटाल या लायजाल या इथेनाल में 5 मिनट तक डुबोकर या अच्छी तरह साफ करके ही प्रयोग करें।

बदलते जलवायु परिस्थिती में किसानों के लिए समय की माँग है “कैच क्रॉप”

डॉ ममता सिंह
वैज्ञानिक-पादप प्रजनन एवं अनुवांशिकी
कृषि विज्ञान केंद्र, सागर, मध्य प्रदेश

तोरिया क्रूसीफेरी परिवार तथा ब्रेसिका वंश की फसल है। तोरिया खरीफ एवं रबी के मध्य में उगाई जाने वाली महत्वपूर्ण तिलहनी फसल है। इसके हरे पौधे का प्रयोग हरे साग के रूप में, पशुओं के चारे के रूप में, मृदा कटाव रोकथाम के लिए तथा हरी खाद के लिए किया जाता है। इसके बीज का प्रयोग आचार, मसले, करी पावडर तथा उबटन बनाने के लिए प्रयोग करते हैं। इसके तेल का उपयोग सब्जियों को पकाने, तलने, छानने के अतिरिक्त आचार निर्माण में भी किया जाता है। खाद्य तेल के अतिरिक्त इसका उपयोग वनस्पति घी बनाने, बालों में लगाने शरीर की मालिश, औषधि निर्माण, साबुन निर्माण दीपक जलाने, ग्रीस निर्माण, प्लास्टिक निर्माण, चमड़ा उद्योग आदि में प्रयोग किया जाता है। तेल निकलने के उपरान्त प्राप्त खली का उपयोग पशुओं को खिलने तथा खाद के रूप में किया जाता है प् इसकी खेती के द्वारा अतिरिक्त आय अर्जित किया जा सकता है।

भूमि एवं खेत की तयारीः

इसकी खेती बलुअर से लेकर बलुअर दोमट भूमियों में की जा सकती है। तोरिया का पौधा क्षारीयता के उच्च स्तर के प्रति सहिष्णु है, फिर भी 7-8 पी.एच. मन की भूमि उपयुक्त रहती है। एक जुताई मिटटी पलट हल से करने के बाद 2-3 जुताई देशी हल या कल्टीवेटर से करके
आवश्यकतानुसार पाटा लगाकर मिटटी को भुरभुरी व समतल कर लेते हैं। बुआई के समय उचित नमी का होना आवश्यक है।

प्रमुख प्रजातियाँ ।

क्र.स.	किस्म का नाम	परिपक्वता अवधि (दिन)	उत्पादन क्षमता (कु./हे.)
1.	टी. 9 (काली)	90 - 95	12 - 15
2.	भवानी	75 - 80	10-12
3.	टी. 36 (पीली)	95 - 100	10 - 12
4.	पी. टी. 303	90 - 95	15 -18
5.	पी. टी. 30	90 - 95	14 - 16
6.	पी. टी. 507	85 - 90	14 - 18
7.	नरेन्द्र अगेती राई - 4	95 -100	15 - 20

बीज की मात्रा एवं शोधनः

तोरिया की बुआई के लिए 4 किग्रा/हे.० बीज की जरूरत होती है तथा नरेन्द्र अगेती राई- 4 का बीज 5 किग्रा./हे. की दर से प्रयोग करना चाहिए। बीज शोधन के लिए 2.5 ग्राम थिरम या 2 ग्राम कार्बेन्डाजिम या 5

-10 ग्राम ट्राईकोडरमा पावडर में से किसी एक दवा को प्रति किग्रा. बीज दर से लेकर किसी साफ घड़े में बीज एवं दवा डालकर पालीथीन से मुंह बांधकर अच्छी तरह बीज पर दवा लगाते हैं। आवश्यकतानुसार घड़े में थोडा पानी दवा चिपकने के लिए मिलाते हैं और बीज को किसी साफ जगह पर निकल कर दुसरे दिन बुआई का कार्य करते हैं।

बुआई का समय, बिधि एवं दूरी:

तोरिया की बुआई सितम्बर के प्रथम पखवारे में तथा भवानी प्रजाति की बुआई द्वितीय पखवारे में करनी चाहिए। छिटकवा विधि की अपेक्षा कतारों में बुआई करना अच्छा होता है। बुआई सीड ड्रिल अथवा हल के पीछे करना उचित रहता है। बुआई के समय भूमि में उचित नमी का होना अनिवार्य है। तोरिया की बुआई के लिए लाईन से लाईन की दूरी 30 सेमी. तथा पौध से पौध की दूरी 10 -12 सेमी. रखते हैं तथा बीज की गहराई हल्की भूमियों में 4 - 5 सेमी. तथा भारी भूमियों में 2 - 3 सेमी. रखते हैं।

खाद एवं उर्वरक तथा प्रयोग विधिरः

खाद एवं उर्वरक का प्रयोग मृदा परीक्षण की संस्तुतियों के आधार पर ही करना चाहिए। तोरिया की अच्छी उपज के लिए 40 कु. प्रति हे० की दर से सड़ी गोबर की खाद प्रयोग करना चाहिए। असिंचित दशा में 50 किग्रा. नत्रजन, 30 किग्रा. फास्फोरस, तथा 30 किग्रा. पोटाश प्रति हे० की दर से प्रयोग करना चाहिए। जबकि सिंचित दशा में 80 -100 किग्रा. नत्रजन, 50 किग्रा. फास्फोरस तथा 50 किग्रा. पोटाश प्रति हे० की दर से प्रयोग किया जाना चाहिए। फास्फोरस का प्रयोग सिगल सुपर फास्फेट के रूप में प्रयोग करना लाभदायक रहता है क्योकि इसमें 12 प्रतिशत सल्फर होने के कर्ण उसे अलग से देने की जरूरत नही पड़ती। फास्फोरस व पोटाश की सम्पूर्ण मात्रा तथा नत्रजन की आधी मात्रा बुआई के समय नाई या चोंगे द्वारा बीज से 2 - 3 सेमी. नीचे प्रयोग करना चाहिए। शेष नत्रजन की मात्रा प्रथम सिंचाई (बुआई के 25 - 30 दिन) के बाद टापड्रेसिंग के रूप में करना चाहिए। यदि सिंगल सुपर फास्फेट का प्रयोग नही किया जाता है तो 200 किग्रा. जिप्सम का प्रयोग खेत की अन्तिम जुताई के समय करना चाहिए। नरेन्द्र अगेती राई- 4 हेतु 80 किग्रा. नत्रजन, 40 किग्रा. फास्फोरस, व 40 किग्रा पोटाश प्रति हे० की दर से प्रयोग करना चाहिए।

खरपतवारों का नियंत्रण/निराई-गुड़ाई/विरलीकरणः

तोरिया के प्राम्भिक जीवन कल में खेत का खरपतवार रहित होना अत्यंत आवश्यक है। इसलिए बोने से 15 - 20 दिन बाद की अवस्था में पहली सिचाई से पूर्व निराई - गुड़ाई एवं पौधे का विरलीकरण करना आवश्यक होता है। विरलीकरण इस तरह करें की पौध से पौध की दूरी 10 - 12 सेमी. हो जाय। यदि रसायनिक विधि से नियंत्रण करना है तो अंकुरण से पूर्व (बुआई से 2-3 दिन के अंदर) पेंडीमेंथलीन 30 ई.सी. का 3.3 लीटर मात्रा 800 लीटर पानी में घोलकर फ्लैट फैन नाजिल से प्रति हे० क्षेत्र में छिड़काव करना चाहिए।

सिचाईः

मिटटी की दशा एवं प्रजाति के आधार पर आवश्यकतानुसार सिचाई निम्नवत तरीके से करते हैं पहली सिचाई फूल बनते समय तथा दूसरी दाना भरते समय वर्षा न होने पर करनी चाहिए । यदि एक सिचाई उपलब्ध हो तो बुआई के 20-25 दिन बाद अर्थात फूल निकलते समय करनी चाहिए।

फसल सुरक्षाः

झुलसा रोग एवं रोकथामः

इस रोग में पत्तियों तथा फलियों पर गहरे कत्थई रंग के धब्बे बनते हैं, जिनमें गोलाकार आकृति में छल्ले पत्तियों पर दिखाई देते हैं प् इसकी रोकथाम के लिए कासुगामाईसिन 3 प्रतिशत एस.एल. 1-1.5 मिली/लीटर पानी या क्लोरोथैलोंनिल 75 प्रतिशत डब्लू.पी. 2 ग्राम/लीटर पानी या पायराक्लोस्ट्रोबिन (कैब्रियोटाप) 55 प्रतिशत डब्लू. जी. 1 ग्राम/लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

तुलासिता रोग (मृदरोमिल आसिता रोग) एवं रोकथामः

इस रोग के प्रकोप में पत्तियों की निचली सतह पर सफेद रोंयेदार फफूदी तथा ऊपरी सतह पर पीलापन होता है। इसकी रोकथाम के लिए रिडोमिल 72 प्रतिशत चूर्ण की 2-2.5 ग्राम/लीटर पानी या थायोफानेट मिथाइल 70 प्रतिशत डब्लू.पी. 1-1.5 ग्राम/लीटर पानी या कॉपर हाइड्रोक्साइड 77 प्रतिशत डब्लू.पी. 1-1.5 ग्राम/लीटर पानी या डाईमेथोमार्फ 50 प्रतिशत डब्लू.पी. (एक्रोबेट) की 1 ग्राम/लीटर पानी या मेंटीराम 70 प्रतिशत डब्लू. जी. की 4 ग्राम/लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

सफेद गेरूई रोग एवं रोकथामः

इस रोग के प्रकोप में पत्तियों की निचली सतह पर सफेद फफोले बनते हैं इसके बाद इनका प्रकोप पुष्प विन्यास पर भी हो जाता है। इस रोग की रोकथाम हेतु रिडोमिल 72 प्रतिशत डब्लू. पी. की 2-2.5 ग्राम/लीटर पानी या फेनामीडॉन 10 डब्लू.जी. (रीजन) 1-1.5 ग्राम/लीटर पानी या पायराक्लोस्ट्रोबिन (कैब्रियोटाप) 55 प्रतिशत डब्लू. जी. 1 ग्राम/लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

दीमक एवं नियंत्रणः

यह कीट जड़ एवं तने को या बुआई के बाद बीजों को खाकर नष्ट करता है। इसके नियंत्रण के लिए अन्तिम जुताई के समय फिप्रोनिल 0.3 जी. की 20-25 किग्रा/हे. मिलाना चाहिए। अथवा क्लोरान्त्रानीलीप्रोल 0.4ः जी.आर. 4-7.5 किग्रा./एकड़ की दर से प्रयोग करना चाहिए। खड़ी फसल में दीमक का प्रकोप दिखाई देने पर क्लोरपायरीफास 16% +अल्फासायपरमेथ्रिन 1% की 0.85-1.0 मिली/लीटर पानी की दर से या थायामेंथोक्जाम 25% डब्लू.जी. 1 ग्राम/4 ली. पानी की दर से मिलाकर छिड़काव करें।

आरा मक्खी एवं नियंत्रणः

इस कीट की सूंडी (गिडार) अवस्था ही हानि पहुंचाती है। इसकी गिडारें काले रंग की होती हैं जो पौधे के जमाव के बाद कोमल पौधों को बहुत तेजी से खाती हैं जिससे पत्तियों में अनेक छोटे-छोटे छेद हो जाते हैं जिससे पत्तियाँ बाद में गिर जाती हैं प् इस कीट के नियंत्रण हेतु डाईक्लोरोवास 76 प्रतिशत ई.सी. की 0.5 लीटर या मैलाथियान 50 प्रतिशत ई.सी. या क्यूनलफास 25 प्रतिशत ई.सी. 1-1.5 लीटर मात्रा 600-800 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टर छिड़काव करना चाहिए।

बालदार गिडार एवं नियंत्रणः

इस कीट के शिशु तथा प्रौढ़ दोनों हानि पहुंचाते हैं प् शिशु चमकीले नारंगी रंग का, आँखे गहरी लाल होती हैं। प्रौढ़ कीट का सिर छोटा, तिकोना आँखे काली उभरी हुई होती हैं प् यह पौधों की मुलायम पत्तियों तथा तनों से रस चूसते हैं जिससे पत्तियाँ पीली होने लगती हैं तथा पौधों की बढवार रूक जाती है। जिस स्थान पर

यह कीट रस चूसता है वहाँ पर काले रंग की कवक उग आती है जिससे पत्तियों में स्थान-स्थान पर गहरे भूरे या काले रंग के धब्बे दिखाई पड़ते हैं इस कीट का प्रकोप खड़ी फसल के अतिरिक्त फसल कटने के बाद खलिहान में भी होता है। इसकी रोकथाम के लिए मिथाइलपैराथिआन 2 प्रतिशत धूल की 25 किग्रा/हे० या डाईक्लोरोवास 76 प्रतिशत ई.सी. की 0.5 लीटर या क्लोरपायरीफास 16% + अल्फासायपरमेथ्रिन 1% की 0.85-1.0 मिली/लीटर पानी की दर से या थायामेंथोक्जाम 25% डब्लू.जी. 1 ग्राम/4 ली. पानी की दर से मिलाकर छिड़काव करें।

मांहू कीट एवं नियंत्रणः

यह कीट कोमल छोटा, मटमैले रंग का होता है जो झुण्ड बनाकर पत्तियों, फूलों, डंठलों, फलियों आदि पर चिपक कर रस चूसता है जिससे पौधे कमजोर हो जाते हैं और अधिक प्रकोप होने पर पौधे सूख जाते हैं। इसके नियंत्रण के लिए इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. की 1 मिली./लीटर पानी या डायाफेनथ्युरान 50% डब्लू पी. 1 ग्राम/ली. पानी या थायोमेथोक्जाम 12.6% + लैम्डासाईहैलोथ्रिन 9.5% एस. सी. 1 मिली./लीटर 2 ली. पानी की दर से 2 छिड़काव 12-15 दिनों के अंतराल पर करें।

शरद ऋतु में नवजात बछड़े/बछड़ी का उचित देखभाल एवं आहार प्रबंधन

पंकज कुमार गुप्ता[1] सुनील सिंह[2] ,विवेक प्रताप सिंह[3] सुधांशु वर्मा[4] एवं जितेंद्र कुमार कुशवाहा[5]

[1]कृषि विज्ञान विभाग, इंटीग्रल विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.) [2]कृषि विज्ञान केंद्र, धौरा, उन्नाव (उ.प्र.)[3]कृषि विज्ञान केंद्र-द्वितीय, गोरखपुर (उ.प्र.) [4]तकनीकी सहायक, उन्नाव, (उत्तर प्रदेश सरकार) [5]विषय वस्तु विशेज्ञ, मऊ , (उ.प्र.)

जैसा की माना जाता है कोई भी झुंड/हर्ड या अच्छे गोशाला का भविष्य नवजात बछड़े/बछड़ी पर निर्भर करता है, इसीलिए कहा जाता है कि अच्छे जानवर पाले जाते हैं खरीदे नहीं जाते (Good animals are raised not purchased)। सर्दियों मे बछड़े एवं बछड़ी को बचाना अत्यन्त आवश्यक है/ यदि इन नवजातों को ठंडी हवा व धुंध से बचाने का सामुच्चय प्रबंधन न हो तो ये नवजात बछड़े एवं बछड़ी बीमार पड़ जाते है। जिसकी वजह से इनका शारीरिक संतुलन बिगड़ने लगता है और इनमें बिभिन्न प्रकार के रोग लगने की सम्भावना बढ़ जाती है।

ठंड के मौसम में नवजात बछड़े/बछड़ी की देखभाल में विशेष रूप से एहतियात रखने की आवश्यकता होती है, क्योंकि जन्म के तुरंत बाद से लेकर तीन-चार माह तक बहुत ही नाजुक /कोमल होते है और खासकर सर्दियों के मौसम में तो शरीर अतिकोमल व सम्वेदनशील हो जाता है।

नवजात बछड़े/बछड़ी में सर्दी होने के प्रमुख लक्षणः

1 शरीर का तापमान कम होना

2 नाक से प्रायः पानी का बहना

3 पानी काम पीना

4 शरीर को हमेशा सिकोड़ कर रखना

5 चलने-फिरने में फुर्ती का न होना

6- भूख बहुत कम लगना या न के बराबर

7- जुखाम का होना

8- निमोनिया का होना

9 दस्त का होना

नवजात बछड़े/बछड़ी को सर्दियों से बचाने के मौलिक उपचारः

1 यदि भयंकर शीतलहर हो तो अलाव जलाकर उसके शरीर को गर्मी पहुंचाये एवं सरसों के तेल को गरम करके शरीर के ऊपरी हिस्से पर मालिश करें।

2 नवजात बछड़े/बछड़ी को जूट से बने बोरे पहनाएं जिससे उनका शरीर गर्म रहे।

3-नवजात बछड़े/बछड़ी को पीने के लिए गरम पानी/साफ एवं स्वच्छ पानी की भरपूर व्यवस्था करें।

4-पशुओं को निमोनिया से बचाने के लिए उन्हें घर में गर्म स्थानों पर रखना चाहिए.

5-देर रात तक खुले में न रखा जाए और बढ़िया धूप हो तो उस मौसम में ही उन्हें नहलाना चाहिए।

6-पशुओं के बांधने वाली जगह पर सफाई रखी जानी चाहिए तथा निमोनिया की शिकायत होने पर नजदीकी पशुचिकित्सक को संपर्क करना चाहिए।

7-नवजात बछड़े/बछड़ी के बैठने के स्थान {पशुशाला} के दरवाजे, खिड़कियां व अन्य खुले स्थान को दिन डूबते समय त्रिपाल/ बोरी से ढ़क देना चाहिए जिससे इन सबको सीधी ठंडी हवा न लगे।

8-शाला मे रात्रि में फर्श पर पुआल या बेकार भूसा का बिछावन बिछाए जिससे जमीन से परोक्ष रूप से ठंड न लगें।

9-शाला का फर्श ढलाननुमा रहना चाहिए जिससे इन नवजात बछड़े/बछड़ी के मूत्र बहकर निकाल जाएं और बिछावन बराबर शुष्क बना रहे

10-नवजात बछड़े/बछड़ी को प्रायः धूप निकलने पर ही बाहर निकालें

11-धूप निकलने के बाद नवजात बछड़े/बछड़ी को शाला से बाहर निकालने से शाला का फर्श या जमीन अच्छी तरह से शुष्क हो जाएगा तथा इन सबको रात्रि मे अत्यधिक गरमाहट महशूस होगा।

12 नवजात बछड़े/बछड़ी के नाक में अजवाइन का धुआँ करने से साँस लेने आसानी होती है।

आहार प्रबन्धनः

ब्यात के तुरंत पहले आधे घण्टे के अंदर नवजात बछड़े/बछड़ी को माँ का पहला दूध खीस अवश्य पिलाना चाहिए।

खीस की मात्रा नवजात बछड़े/बछड़ी के वजन का एक बटा दसवाँ (1/10 वां) हिस्सा के बराबर होना चाहिए।

खीस में इम्युनोग्लोबुलिन{Ig} प्रचुर मात्रा में पाया जाता है जो रोग प्रतिरोधक छमता को विकसित करता है

खीस मे जो प्रोटीन पाया जाता है नवजात बछड़े/बछड़ी को खीस इसलिए पिलाना मौलिक कर्तव्य है

क्योंकि इसमें ग्लोबुलिन प्रोटीन की मात्रा सामान्य दूध की अपेक्षा ज्यादा पाया जाता है। इसके अलावा इसमें ऐन्टीबॉडी (इम्युनोग्लोबुलिन, Ig} पाया जाता है जो नवजात बछड़े/बछड़ी को बहुत सारे संक्रमण से बचाव करता है

नवजात बछड़े/बछड़ी में जन्म के समय उनके ब्लड सीरम में गामा- ग्लोबुलिन की मात्रा 0.97एम जी/ एम.एल. होता है और यही मात्रा प्रथम खीस पिलाने पर 16.55एम जी/ एम.एल. हो जाता है और पुनः अगले दिन खीस पिलाने पर ब्लड सीरम में गामा-ग्लोबुलिन की मात्रा 28.18 एम जी/ एम. एल. हो जाता है जो इनमें ऐन्टीबॉडी/प्रतिरक्षी प्रतिरक्षा करता है।

खीस में प्रोटीन की मात्रा सामान्य दूध से तीन से पाँच गुणा ज्यादा पाया जाता है ये खीस बहुत सारे खनिज लवणों से युक्त है जैसे- जिंक आयरन कॅापर एवं मैंगनीज आदि।

खीस में प्रोटीन के अलावा सामान्य दूध से पाँच से पंद्रह गुणा ज्यादा विटामिन-ए पाया जाता है

नवजात बछड़े/बछड़ी के लिए खीस दूध के अपेक्षा बहुत ही सर्वोच्च भोजन माना जाता है क्योंकि इसमें न सिर्फ विटामिन-ए ही पाया जाता है बल्कि और भी बहुत सारे विटामिंस पाए जाते है जैसे की रिबोफ्लेविन कोलीन थायामीन एवं पेन्टोथेनीक ऐसिड इत्यादि।

कोलोस्ट्रम या खीस एक मृदुरेचक के रूप में कार्य करता है जिसके कारण नवजात बछड़े/बछड़ी का पहला गोबर अर्थात मेकोनियम{ जातविष्ठा- गहरे हरे रंग का पदार्थ जो नवजात शिशु/बछड़े/बछड़ी के पहले मल का निर्माण करता है।} बाहर निकाल जाता है और उनके पाचन क्रिया को आसान बनाता है

खीस एवं दूध का तुलनात्मक संगठनः

क्रमांक	**अवयव**	**खीस**	**दूध**
1	टैस्ट (स्वाद)	हल्का तीखा	मीठा
2	ओडर (गंध)	असामान्य	सामान्य
3	एसिडिटी (लवणता)	0.2-0.4	0.12-0.14
4	फ्रीजिंग पॉइंट(जमाव बिन्दु)	(-)0.606	(-)0.52-0.56
5	क्लोराइड	0.148-0.158	0.140
6	स्पेसिफिक ग्रैविटी(अपेक्षित घनत्व)	1.050-1.080	1.029-1.032
7	रेफरेक्टिव इंडेक्स एट 20°C	दूध से ज्यादा	1.344-1.0348
8	इलेक्ट्रिकल कान्डक्टिविटी	दूध से ज्यादा	0.005 mho
9	विस्कोसिटी(श्यानता)	दूध से ज्यादा	1.5-2.0 सेन्टीपॉइस

हैन्ड्बुक ऑफ एनिमल हसबैन्ड्री- जी. सी. बनर्जी

सम्पूर्ण दूध पिलाना:

नवजात बछड़े/बछड़ी को पूरा दूध जन्म से लगभग दो सप्ताह तक सम्पूर्ण दूध पिलाना चाहिए तहत उसके

तुरंत बाद या उसी समय से दाना-मिश्रण {ग्रैन मिक्स्चर} देना शुरू कर देना चाहिए।

दाना-मिश्रण {ग्रैन मिक्स्चर}ः

कॅाफ स्टार्टर एक मिश्रण है जिसमें पीसा हुआ फार्म अनाज, प्रोटीन फ़ीड तथा खनिज विटामिन और एंटीबायोटिक्स शामिल हैं

नवजात बछड़े/बछड़ी को पूरा दूध पिलाते समय या पिलाने के बाद सारिणी में दी गयी भोजन सूची का अनुसरण करते हुए खिलाया जाना चाहिए। शुरुआती तीन महीनों तक नवजात बछड़े/बछड़ी को कॅाफ स्टार्टर तथा उच्च {अच्छी} गुणवत्ता की उपलब्ध फलियाँ या हरी घास खिलाई जा सकती है सात-पन्द्रह दिन की उम्र में नवजात बछड़े/बछड़ी को दाना-मिश्रण {ग्रैन मिक्स्चर} देना शुरू कर देना चाहिए।

नवजात बछड़े/बछड़ी का दाना-मिश्रण {ग्रैन मिक्स्चर}का अनुपात- प्रथम

क्रमांक	**अवयव**	**प्रतिशत**
1	जई {oat}	35
2	तीसी की खली {linseed cake}	5
3	चोकर {bran}	30
4	जौ {barley}	10
5	मूंगफली की खली {groundnut cake}	20
नवजात बछड़े/बछड़ी का दाना-मिश्रण {ग्रैन मिक्स्चर}का अनुपात- द्वितीय		
क्रमांक	**अवयव**	**प्रतिशत**
1	मक्का {maize}	40
2	गेहूँ का चोकर {wheat bran}	40
3	तीसी की खली {linseed cake}	20

हैन्ड्बुक ऑफ एनिमल हसबैन्ड्री- जी. सी. बनर्जी

साइलेज खिलनाः

नवजात बछड़े/बछड़ी का उम्र तीन-छः माह के बीच मे हो तो उन सबको थोड़ी-थोड़ी मात्रा में साइलेज खिलना शुरू कर देना चाहिए। और यही नवजात बछड़े/बछड़ी का उम्र तीन-चार माह के मध्य में हो तो उन सबको एक-दो किलोग्राम प्रतिदिन फ़ीड खिलना चाहिए एवं धीरे-धीरे हर माह फ़ीड की मात्रा को लगभग पाँच सौ ग्राम बढ़ाते रहना चाहिए और ध्यान रहे साइलेज की गुणवत्ता अच्छी होनी चाहिए नहीं तो उनके पाचन प्रणाली खराब होने की प्रवित्ति ज्यादा हो जाती है। जिसकी वजह से उनके वृद्धि एवं विकास में बाधा पड़ सकती है।

गन्ने के साथ अन्तर्वर्ती फसलः आय वृद्धि एवं टिकाऊपन का उत्तम साधन

डॉ. आर. पी. सिंह[1], डॉ. एस.के. गंगवार[2], डॉ. डी.के. तिवारी[2] एवं डॉ. पी.के. मिश्रा[2]

[1]वरीय वैज्ञानिक एवं प्रधान, कृषि विज्ञान केंद्र, नरकटियागंज, पश्चिम चम्पारण, बिहार

[2]कृषि विज्ञान केंद्र, माधोपुर, पश्चिम चम्पारण, बिहार

गन्ना भारतवर्ष में उष्ण-कटिबंधीय एवं उपोष्ण-कटिबंधीय जलवायु क्षेत्रों में उगाया जाता है। उपोष्ण जलवायु क्षेत्र में गन्ना उत्पादक राज्यों में मुख्यत: उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, बिहार एवं पशिम बंगाल आते हैं। गन्ने का भारत की कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण स्थान है एवं हमारे देश की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में गुणात्मक सुधार लाने में प्रमुख भूमिका निभाता है। गन्ना एवं चीनी उद्योग न केवल 60 लाख किसानों व उनके परिवारों को रोजगार प्रदान करते हैं, बल्कि उनकी आर्थिक समृद्धि व खुशहाली के लिए आवश्यक संसाधन जुटाने में भी मददगार हैं। इसके अतिरिक्त चीनी मिलों से रोजगार भी उपलब्ध होता है। देश में वर्ष 2019-20 में 46.03 लाख हेक्टेयर क्षेत्र से 80.49 टन/हेक्टेयर उत्पादकता के साथ 3705.00 लाख टन गन्ने का उत्पादन किया गया। बिहार राज्य में वर्ष 2019-20 में 223.89 हजार हेक्टेयर क्षेत्र से 60.64 टन/हेक्टेयर उत्पादकता के साथ 13578. 83 हजार टन गन्ने का उत्पादन किया गया। जिसमें 143755 हेक्टेयर क्षेत्रफल से 61.80 टन/हेक्टेयर उत्पादकता के साथ 8867096 टन गन्ने का उत्पादन किया गया।

कम अवधि की अधिक आय देने वाली फसलों को गन्ने के साथ अन्तर्वर्ती फसल के रूप में उगा कर मृदा की उत्पादन क्षमता बढ़ाने, उत्पादन लागत कम करने और उत्पादन पद्धति को टिकाऊ बनाये रखने में सहायता मिलती है। इस प्रकार फसल विविधीकरण में उपलब्ध स्त्रोतों का समुचित उपयोग कर सीमांत और लघु किसानों की आर्थिक और सामाजिक स्तर को उठाया जा सकता है। इसके साथ एकल एवं सतत कृषि के दुष्प्रभाव को कम किया जा सकता है। गन्ने के कुल क्षेत्रफल का 10% शरद काल में, 60 से 65% प्रतिशत बसंत काल में और 20 से 25% ग्रीष्म काल में बोया जाता है। उपर्युक्त ऋतु में गन्ना क्रमश: 90 ,75 एवं 60 सेंटीमीटर की दूरी पर बोया जाता है। उत्तर भारत में गन्ना मुख्यतः शरद काल (अक्टूबर) और बसंत काल (फरवरी-मार्च) में लगाया जाता है। ग्रीष्म काल को छोड़कर बाकी दोनों ऋतुओ में गन्ने के साथ अन्तर्वर्ती फसल ली जा सकती है। अत: गन्ने में अन्तर्वर्ती फसल के रूप में विविधीकरण पद्धति से दलहनी, तिलहनी तथा नकदी फसलों को गन्ने के साथ लगा कर इनकी उत्पादकता भी बढ़ाई जा सकती है। शीतकालीन पेड़ी में चारा अत: फसलों से चारा उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ गन्ना पेड़ी में आंखों के प्रस्फुटन में बढ़ोतरी संभव है।

अन्तर्वर्ती फसल हेतु गन्ना बोने की उन्नत विधियां

विभिन्न बुवाई विधियों में कुंड विधि , समतल विधि ,गड्ढा विधि , नाली विधि आदि विभिन्न परिस्थितियों हेतु विकसित की गई हैं। इसमें नाली विधि एवं गड्ढा विधि द्वारा बड़े पैमाने पर अधिक उपज प्राप्त करने के लिए

खेती की जा रही है। नाली विधि द्वारा गन्ने की बुवाई 30 सेंटीमीटर चौड़ी एवं 30 सेंटीमीटर गहरी नालियों में की जाती हैं। एक नाली में गन्ने की दो पंक्तियां रखी जाती है। वर्तमान में नवीन बुआई पद्धतियों में गन्ना पौध प्रत्यारोपण विधि बहुत ही उपयोगी पाई गयी है क्योंकि इसमें ज्यादा गन्ना उपज के साथ-साथ पोषक तत्व क्षमता एवं लाभ लागत अनुपात अधिक पाया जाता है। इसके अतिरिक्त फसल से अधिक उपज भी प्राप्त होती है। यह विधि अन्तर्वर्ती फसल लेने के लिए अधिक उपयोगी पाई गयी है। इस विधि में दो तरीकों से पौध प्रत्यारोपण किया जाता है। प्रथम 5 x 2 फीट (क्यारी x पौध) पर पौध प्रत्यारोपण करने पर 5000 पौध/एकड़ लगता है तथा दूसरा 4 x 1.5 फीट (क्यारी x पौध) दूरी पर पौध प्रत्यारोपण करने में 8000 पौध/ एकड़ आवश्यकता पड़ती है। उपोष्ण क्षेत्रों में नालियों के केंद्र से दूरी 150 सेंटीमीटर (120:30 सेमी) रखी जाती है। सिंचाई जल को अधिक समय तक ग्रहण करने के कारण इस विधि से सिचाई जल में कमी की जा सकती है। जड़ों की गहराई तथा वृद्धि अधिक होने से समतल विधि की अपेक्षा इस विधि से लगभग 30 प्रतिशत तक गन्ने की उपज अधिक प्राप्त होती है।

शरद कालीन गन्ने में अन्तर्वर्ती-फसली खेती

शरद कालीन गन्ने की पैदावार बसंत कालीन गन्ने की तुलना में 15 से 20% तथा चीनी का परता 0.5 प्रतिशत अधिक होता है। गन्ना + आलू की अन्तर्वर्ती फसली खेती से आलू - गन्ना क्रमबद्ध पद्धति की तुलना में दोनों फसलों की उपज में बढ़ोतरी के साथ साथ उर्वरक में भी बचत होती है। इसी तरह राजमा की अंत: फसल की खेती करने पर गन्ने की पैदावार पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। शरद कालीन गन्ने की पंक्तियों के बीच मसूर की दो पंक्तियां के अंत: फसलें बुवाई पद्धति में 150 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर *एजोस्पिरिलम* के साथ प्रयोग करने से गन्ना समतुल्य उपज में वृद्धि के साथ-साथ 37.5 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर की बचत भी पाई गई है। शरद कालीन गन्ने में सरसों की 1:1 पद्धति से शुद्ध लाभ में वृद्धि होती है। इसी प्रकार सरसों की 2 पंक्तियों की अन्तर्वर्ती फसलें (1:2) को लिया जा सकता है।

बसंत कालीन गन्ने के साथ अन्तर्वर्ती-फसली खेती

बसंत कालीननग गन्ना-पेड़ी फसल पद्धति में कार्बनिक पदार्थो का संरक्षण एवं खरपतवार नियंत्रण मुख्य मुद्दा है। इसका समाधान दलहनी अन्तर्वर्ती फसलों के चयन द्वारा किया जा सकता है। बसंत कालीन गन्ने के साथ मूँग और उड़द की फसल की खेती मुख्यता उत्तर प्रदेश, बिहार, पंजाब और हरियाणा में की जाती है। द्विउद्देशीय दलहनी फसलों के समावेश से गन्ना + लोबिया व गन्ना + मूंग पद्धति द्वारा शुद्ध लाभ में वृद्धि की जा सकती है। इन फसलों की फली तोड़ने के बाद पौधों को हरी अवस्था में ही गन्ने की दो पंक्तियों के बीच भूमि में पलट कर दबा देने से 30 से 40 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर की बचत होती है। लोबिया + मूंग की सहफसली पद्धति से प्रति हेक्टेयर क्रमशः 70.60 और 48.10 किलोग्राम नाइट्रोजन का योगदान होता है। बसंत कालीन गन्ने की पत्तियों के बीच स्थान में हरी खाद के लिए ढैंचा की सघन बुवाई से खरपतवार का नियंत्रण प्रभावी ढंग से हो जाता है। ढैंचा के सड़ने की प्रक्रिया में निकलने वाले रसायन (एलीलोपैथी),मोथा जैसे खरपतवार के जमाव को रोकते हैं। इसके साथ ही साथ साथ मृदा में पोषक तत्वों

को संतुलित रखते हैं |

शीतकालीन पेढ़ी आधारित अंतः फसली खेती

जाड़े में शुरू की गई पेड़ी में अधोभूमिगत स्थित गन्ने की आँखों का ना जमना फसल के असफल होने का मुख्य कारण है | गन्ने की अधिक शर्करा युक्त शीघ्र पकने वाली प्रजातियों के साथ यह एक विशेष समस्या है | उपयुक्त तापमान आने तक इन्हें अधोभूमिगत आंखों की दैहिक क्रिआओ को सक्रिय अवस्था में लाकर इस समस्या का समाधान संभव है | सघन तथा जल्दी बढ़ने वाली चारा फसलों जैसे बरसीम एवं सेंजी की बुवाई कर जाड़े के प्रभाव को प्रभाव को कम करके पेड़ी में अच्छा फूटाव प्राप्त किया जा सकता है | ये चारे की फसलें पेड़ी में जीवन्त अवरोध परत के रूप में जल क्षेत्र का ताप नियंत्रण तथा भूमिगत स्थित आंखों को पाले के कुप्रभाव से बचाव करती है | इसमें वसंत आने पर पेड़ी में उपर्युक्त फुटाव हो जाता है और गन्ना-पशु पद्धति को बल मिलता है |

सरणी 1. गन्ने के साथ चुनिन्दा अन्तर्वर्ती फसल खेती से प्रति हेक्टेयर शुद्ध लाभ

अंतः फसल	पंक्ति समायोजन	औसत उपज/आर्थिक आय
गन्ना	-	गन्ना: 95 टन/हे.; शुद्ध लाभ: रू. 140000/-हे.
गन्ना + मक्का	1:1 या 1:2	गन्ना: 80 टन/हे.; मक्का हरा भुट्टा: 80000/हे.; शुद्ध लाभ: रू. 352400/-हे.
गन्ना + आलू	1:2	गन्ना: 95 टन/हे.; आलू: 24.5 टन/हे.; शुद्ध लाभ: रू. 321300/-हे.
गन्ना + सरसों	1:2	गन्ना: 75 टन/हे.; सरसों: 15 कुन्तल/हे.; शुद्ध लाभ: रू. 147500/-हे.
गन्ना + मसूर	1:2	गन्ना: 75 टन/हे.; मसूर: 12 कुन्तल/हे.; शुद्ध लाभ: रू. 198800/-हे.
गन्ना + राजमा	1:2	गन्ना: 85 टन/हे.; राजमा: 18 कुन्तल/हे.; शुद्ध लाभ: रू. 313200/-हे.
गन्ना + मूँग	1:2	गन्ना: 75 टन/हे.; मूँग: 7 कुन्तल/हे.; शुद्ध लाभ: रू. 145700/-हे.
गन्ना + उड़द	1:2	गन्ना: 75 टन/हे.; उड़द: 6 कुन्तल/हे.; शुद्ध लाभ: रू. 145000/-हे.
गन्ना + लोबिया	1:2	गन्ना: 75 टन/हे.; लोबिया (हरी फली): 29 कुन्तल/हे.; शुद्ध लाभ: रू.148750/-हे.
गन्ना + गोभी	1:1	गन्ना: 90 टन/हे.; गोभी: 200 कुन्तल/हे.; शुद्ध लाभ: रू. 226545/-हे.
गन्ना + पत्तागोभी	1:1	गन्ना: 90 टन/हे.; पत्तागोभी: 225 कुन्तल/हे.; शुद्ध लाभ: रू. 204850/-हे.
गन्ना + गाजर	1:2	गन्ना: 85 टन/हे.; गाजर: 182 कुन्तल/हे.; शुद्ध लाभ: रू. 188680/-हे.
गन्ना + मूली	1:2	गन्ना: 82 टन/हे.; मूली: 305 कुन्तल/हे.; शुद्ध लाभ: रू. 161560/-हे.
गन्ना + शलजम	1:2	गन्ना: 90 टन/हे.; शलजम: 280 कुन्तल/हे.; शुद्ध लाभ: रू. 204825/-हे
गन्ना + लौकी	1:1	गन्ना: 72 टन/हे.; लौकी: 100 कुन्तल/हे.; शुद्ध लाभ: रू. 150000/-हे.
गन्ना + खीरा	1:1	गन्ना: 72 टन/हे.; खीरा: 100 कुन्तल/हे.; शुद्ध लाभ: रू. 155000/-हे.
गन्ना + भिन्डी	1:2	गन्ना: 72 टन/हे.; भिन्डी: 125 कुन्तल/हे.; शुद्ध लाभ: रू. 160000/-हे.
पेड़ी + रिजका	1:3	गन्ना 72टन/ हैक्टर; रिजका 41 टन /है.; शुद्ध लाभ रू. 321148/-हे.

कृषि विज्ञान केन्द्र, पश्चिमी चम्पारण, बिहार-845455,
डा. राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर, बिहार-848125, भारत

गन्ने के साथ सह-फसली खेती: अधिक आय का प्रमुख जरिया

गन्ना + अलसी (1:2)

गन्ना + चना (1:2)

गन्ना + सरसों (1:2)

गन्ना + गेहूँ (2:2)

गन्ना + मसूर (1:2)

गन्ना + आलू (1:2 या 2:2)

गन्ना + मटर (2:2)

गन्ना + लहसुन (1:2)

गन्ना + मक्का (1:1)

गन्ना + राजमा (1:2)

गन्ना + प्याज (1:2)

गन्ना + धनिया (1:2)

गन्ना + गोभीवर्गीय सब्जियाँ

अंत: फसल	औसत उपज/आर्थिक आय
गन्ना	गन्ना: 95 टन/हे.; शुद्ध लाभ: रू. 140000/-हे.
गन्ना + मक्का	गन्ना: 80 टन/हे.; मक्का हरा भुट्टा: 80000/हे.; शुद्ध लाभ: रू. 352400/-हे.
गन्ना + आलू	गन्ना: 95 टन/हे.; आलू: 24.5 टन/हे.; शुद्ध लाभ: रू. 321300/-हे.
गन्ना + सरसों	गन्ना: 75 टन/हे.; सरसों: 15 कुन्तल/हे.; शुद्ध लाभ: रू. 147500/-हे.
गन्ना + मसूर	गन्ना: 75 टन/हे.; मसूर: 12 कुन्तल/हे.; शुद्ध लाभ: रू. 198800/-हे.
गन्ना + राजमा	गन्ना: 85 टन/हे.; राजमा: 18 कुन्तल/हे.; शुद्ध लाभ: रू. 313200/-हे.
गन्ना + मूँग	गन्ना: 75 टन/हे.; मूँग: 7 कुन्तल/हे.; शुद्ध लाभ: रू. 145700/-हे.
गन्ना + उड़द	गन्ना: 75 टन/हे.; उड़द: 6 कुन्तल/हे.; शुद्ध लाभ: रू. 145000/-हे.
गन्ना + लोबिया	गन्ना: 75 टन/हे.; लोबिया (हरी फली): 29 कुन्तल/हे.; शुद्ध लाभ: रू. 148750/-हे.
गन्ना + गोभी	गन्ना: 90 टन/हे.; गोभी: 200 कुन्तल/हे.; शुद्ध लाभ: रू. 226545/-हे.
गन्ना + पत्तागोभी	गन्ना: 90 टन/हे.; पत्तागोभी: 225 कुन्तल/हे.; शुद्ध लाभ: रू. 204850/-हे.
गन्ना +गाजर	गन्ना: 85 टन/हे.; गाजर: 182 कुन्तल/हे.; शुद्ध लाभ: रू. 188680/-हे.
गन्ना + मूली	गन्ना: 82 टन/हे.; मूली: 305 कुन्तल/हे.; शुद्ध लाभ: रू. 161560/-हे.
गन्ना + शलजम	गन्ना: 90 टन/हे.; शलजम: 280 कुन्तल/हे.; शुद्ध लाभ: रू. 204825/-हे.
गन्ना + लौकी	गन्ना: 72 टन/हे.; लौकी: 100 कुन्तल/हे.; शुद्ध लाभ: रू. 150000/-हे.
गन्ना + खीरा	गन्ना: 72 टन/हे.; खीरा: 100 कुन्तल/हे.; शुद्ध लाभ: रू. 155000/-हे.
गन्ना + भिन्डी	गन्ना: 72 टन/हे.; भिन्डी: 125 कुन्तल/हे.; शुद्ध लाभ: रू. 160000/-हे.

गन्ना + मूली एवं गन्ना + मटर

गन्ना + बाकला (2:2)

कृषि उत्पादक संगठन (FPO) के माध्यम से किसानो को प्रोत्साहन

[१]अभिनव सिंह, [२]राजीव कुमार दोहरे, [३]रितेश सिंह, [४]वीरेंद्र प्रताप, [५]अनुराग शंकर सिंह, [६]यश कुमार सिंह

[१,३,५,४] शोध छात्र, [२] प्राध्यापक आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या

एफपीओ (FPO) से सम्बंधित जानकारी

केंद्र सरकार द्वारा कृषि के क्षेत्र को आगे बढ़ाने के लिए किसानो को सहायता प्रदान कर उन्हें समृद्ध बनाने की योजना बन रही है। इसके लिए FPO द्वारा किसानो के समूहों को तैयार किया जायेगा। FPO किसानो का एक ऐसा समूह होता है, जिसमे किसानो के कृषि उत्पादक के कार्य को आगे बढ़ाने का काम किया जाता है। देश के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी द्वारा PM Kisan FPO Yojna का आरम्भ उत्तर प्रदेश के चित्रकूट जिले से की गई। योजना के संचालन के लिए केंद्र सरकार द्वारा 5,000 करोड़ रूपए खर्च किये जायेंगे। FPO के माध्यम से किसानो को उनकी फसल के अच्छे दाम प्राप्त हो सकेंगे। इस पोस्ट में आपको एफपीओ क्या है, FPO का फुल फॉर्म, एफपीओ कैसे बनाए (ऑनलाइन पंजीकरण) के बारे में जानकारी दी जा रही है। एफपीओ को हिंदी भाषा में 'कृषक निर्माता कंपनी' तथा अंग्रेजी भाषा में इसका फुल फॉर्म **FPO- Farmer Producer Organizations** कहा जाता है।

एफपीओ क्या है (What is FPO)

यह किसानो का एक संगठित समूह होता है, जिसका कार्य कृषि के उत्पादन कार्यो को बढ़ाना और कृषि से सम्बंधित व्यावसायिक गतिविधियों के बारे में किसानो को बताना। यदि किसान भाई चाहे तो एक समूह बनाकर कंपनी एक्ट में रजिस्टर्ड कर FPO तैयार कर सकते है। FPO कृषि करने वाले किसान तथा व्यावसायिक गतिविधियों को चलाने में सामान विचार रखने वाले किसान, एक या एक से अधिक गावो के किसान मिलकर इस तरह के समूह को स्वयं तैयार कर सकते है।

FPO का फायदा यह होगा कि किसानो को अपनी फसल के अच्छे दाम प्राप्त होंगे, और खरीदारों को भी उचित मूल्य पर उत्पादन प्राप्त होगा। इसके अलावा वह व्यक्ति जो अपनी फसल को बेचने के लिए अकेले ही चला जाता है, उसका मुनाफा बिचौलियों को मिल जाता है। FPO में आवेदन कर किसान अनेक प्रकार के लाभों को प्राप्त कर सकते है। देश के केंद्रीय कृषि एवं किसान कल्याण मंत्री श्री नरेंद्र सिंह तोमर का कहना है कि देश में वर्ष 2019-20 से लेकर 2023-24 तक तक़रीबन 10,000 नए FPO का संगठन किया जायेगा। जिससे किसानो में सामूहिक शक्ति का विस्तार होगा।

एफपीओ के लाभ (FPO Benefits)

यह एक सीमांत व लघु किसानो का समूह होगा,इस समूह से जुड़े किसानो को अपनी उपज के अच्छे दाम मिलेंगे साथ ही उन्हें खाद, बीज, दवाये और कृषि उपकरणों को खरीदने में भी आसानी होगी।

किसानो द्वारा एफपीओ समूह को संगठित करने के बाद मिलने वाली सेवाएं सस्ते दामों पर प्राप्त हो जाएँगी, इसमें बिचौलियों का कोई काम नहीं होगा।

इस FPO के माध्यम से किसानो को अपने उत्पादन के अच्छे दाम प्राप्त करने के लिए एक सीधा मार्केट मिल जायेगा।

FPO संगठन समूह को तैयार करने के बाद किसानो के मध्य एकजुटता देखने को मिलेगी और भविष्य में उनका शोषण नहीं होगा।

केंद्र सरकार आगामी 5 वर्षो में लगभग 10 हजार कृषि उत्पादक संगठनों को तैयार करने में लगी है।

एफपीओ कैसे बनाये (How to Make FPO)

देश का कोई भी किसान FPO समूह का सदस्य बन सकेगा।

एक संगठन को तैयार करने में न्यूनतम 10 किसानो का होना जरूरी है।

एक संगठन में अधिकतम 1000 किसानो को ही जोड़ा जा सकेगा।

एक हजार किसान समूह वाले संगठन का प्रत्येक किसान एक हजार रूपए देकर दस लाख के वर्किंग कैपिटल को जुटा सकेगा।

किसानो को FPO में आवेदन कराने के लिए कुछ शुल्क देना होता है।

CSC VLE वाले किसान इस संगठन का हिस्सा नहीं होंगे।

एफपीओ में पंजीकरण कैसे करे (FPO Online Registration)

सर्वप्रथम आपको FPO की आधिकारिक वेबसाइट http://www.upagriculture.com पर जाना होगा।

आपके सामने वेबसाइट का Home Page खुल कर आ जायेगा।

इस होम पेज में आपको ऑनलाइन पंजीकरण के लिंक पर क्लिक करना होगा।

आपके सामने एक फॉर्म खुल कर आ जायेगा।

इस फॉर्म में आपको पूछी गई सभी जानकारियों को ठीक-ठीक भरना होगा।

फॉर्म को ठीक तरह से भरने के बाद आपको Submit बटन पर क्लिक करना होगा। इस तरह से FPO में ऑनलाइन रजिस्ट्रेशन कर सकते है।

जनवरी महीने में ये उपाय अपनाकर आम का उत्पादन बढ़ा सकते हैं किसान

डा. एल. सी. वर्मा, वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केंद्र, मऊ

डॉ जितेंद्र कुमार कुशवाहा, एस. एम. एस. उद्यान विज्ञान, कृषि विज्ञान केंद्र, मऊ

डा. फूल कुमारी, एस.एम.एस., गृह विज्ञान, कृषि विज्ञान केन्द्र, हमीरपुर

जनवरी-फरवरी महीने में आम की बाग में कई तरह के रोग लगने की संभावना बढ़ जाती है, जिससे आम उत्पादन पर भी असर पड़ सकता है। ऐसे में किसान अभी से प्रबंधन करके नुकसान से बच सकते हैं। आम की बागवानी उत्तर प्रदेश, बिहार, आन्ध्र प्रदेश, पश्चिमी बंगाल, तमिलनाडु, ओड़िसा, महाराष्ट्र, और गुजरात में व्यापक स्तर पर की जाती है। संयुक्त राष्ट्र के आंकड़ों के अनुसार भारत में विश्व में सबसे अधिक आम उत्पादन करने वाला देश है। इसके साथ ही आम के निर्यातक दस प्रमुख देशों में से पांचवें स्थान पर है। इसलिए यह जरूरी हो जाता है कि समय रहते फसल में आने वाली समस्याओं को पहचाना जाये व उनकी रोकथाम किया जाए।

आम पर लगने वाले प्रमुख रोग

सफ़ेद चूर्णी रोग/दहिया रोग (Powdery mildew):

बौर आने की अवस्था में यदि मौसम बादल वाला हो या बरसात हो रही हो तो यह बीमारी लग जाती है। इस बीमारी के प्रभाव से रोगग्रस्त भाग सफ़ेद दिखाई पड़ने लगता है। इससे मंजरियां और फूल सूखकर गिर जाते हैं।

रोकथामः इस रोग के लक्षण दिखाई देते ही आम के पेड़ों पर पांच प्रतिशत वाले गंधक (दो ग्राम/लीटर पानी) के घोल का छिड़काव करें। इसके अतिरिक्त डायनोकेप (कैराथेन एक मिली/लीटर) घोलकर छिड़काव करने से भी बीमारी पर नियंत्रण पाया जा सकता है। जिन क्षेत्रों में बौर आने के समय मौसम असामान्य रहा हो वहां हर हालत में सुरक्षात्मक उपाय के आधार पर 0.2 प्रतिशत वाले गंधक के घोल का छिड़काव करें और आवश्यकतानुसार दोहराएं।

कालावूणा रोग/एन्थ्रेक्नोज रोग (Antracnose):

यह बीमारी अधिक नमी वाले क्षेत्रों में अधिक पाई जाती है। इसका आक्रमण पौधों के पत्तों, शाखाओं, और फूलों जैसे मुलायम भागों पर अधिक होता है। प्रभावित हिस्सों में गहरे भूरे रंग के धब्बे आ जाते हैं।

रोकथाम: 0.2 प्रतिशत जिनैब मिश्रण का छिड़काव करें। जिन क्षेत्रों में इस रोग की सम्भावना अधिक हो वहां सुरक्षा के तौर पर कलियां विकसित होने से पहले ही उपरोक्त घोल का छिड़काव करें।

ब्लैक टिप/कोइली रोग (BlackTip)

यह रोग ईट के भट्टों के आसपास के क्षेत्रों में उससे निकलने वाली गैस सल्फर डाई ऑक्साइड के कारण होता है। इस बीमारी में सबसे पहले फल का अग्रभाग काला पड़ने लगता है, इसके बाद उपरी हिस्सा पीला पड़ता है। तत्पश्चात गहरा भूरा और अंत में काला हो जाता है। यह रोग दशहरी किस्म में अधिक होता है।

रोकथामः इस रोग से फसल बचाने का सर्वोत्तम उपाय यह है कि ईट के भट्ठों की चिमनी आम के पूरे मौसम के दौरान लगभग 50 फिट ऊंची रखी जाए। इस रोग के लक्षण दिखाई देते ही (संभवतः अप्रैल में) बोरेक्स 1% (एक किग्रा/100 लीटर) पानी की दर से बने घोल का छिड़काव करें। फलों के बढ़वार की विभिन्न अवस्थाओं के दौरान आम के पेडों पर 0.6 प्रतिशत बोरेक्स के दो छिड़काव फूल आने से पहले और तीसरा फूल बनने के बाद छिड़काव करें। जब फल मटर के दाने के बराबर हो जाएं तो 15 दिन के अंतराल पर तीन छिड़काव करना चाहिए।

गुच्छा/गुम्मा रोग (Malformation)

यह एक प्रकार का आम पेड़ों पर होने वाला एक रोग है। प्रायः इस रोग के कारकों में फ्यूजेरियम सबग्लुट्टीनेन्स नामक फफूंद का उल्लेख होता है। लेकिन अनेक विशेषज्ञों का मानना है कि इस रोग का कारण पौधे में होने वाले हार्मोनों का असंतुलन हैं। गुम्मा रोग से ग्रसित आम के पेड़ में पत्तियों और फूलों में असामान्य वृद्धि और फल विकास अवरुद्ध हो जाता है। ऐसा पाया गया है कि आम की भारतीय प्रजातियां इस रोग से अधिक ग्रसित होती हैं।

लक्षण : नई पत्तियों और फूलों की असामान्य वृद्धि, टहनियों पर एक ही स्थान पर अनगिनत छोटी–छोटी पत्तियां निकल आना, बौर के फूलों का असामान्य आकार होना, फूल का गिर जाना, फल निर्माण अवरुद्ध हो जाना आदि। यह दो प्रकार का होता है...

आम के पत्तियों का गुम्मा (Leaf malformation) :

आम की टहनी पर एक पट्टी के स्थान पर अनगिनत छोटी-छोटी पत्तियों का गुच्छा बन जाना, तने की गाठों के बीच का अंतराल अत्यधिक कम हो जाना, पत्तियों का कड़ा हो जाना। बाद में यह गुच्छा नीचे की ओर झुक जाता है, जो बन्ची टॉप जैसा दिखता है।

आम के फूलो का गुम्मा (Floral Malformation):

इस रोग से ग्रसित बौर की डाली अधिक मोटी और अधिक शाखायुक्त हो जाती है, जिसपर दो से तीन गुना अधिक असामान्य पुष्प बन जाते हैं जो कि फल में परिवर्तित नहीं हो पाते हैं। अथवा यदि इन पुष्पों से फल बनता भी है तो जल्द ही सूख कर गिर जाते हैं।

रोकथामः इस बीमारी का मुख्य लक्षण यह है कि इसमें पूरा बौर नपुंसक फूलों का एक ठोस गुच्छा बन जाता है।

(1) आम के पौधे को गुम्मा रोग से बचाने के लिए रोगग्रस्त पुष्पों की मंजरियों को 30-40 सेमी नीचे से कटाई कर दें और धरती में खोद कर दबा दें।

(2) उपचार के लिए प्रारंभिक अवस्था में जनवरी फरवरी माह में बौर को तोड़ दें और अधिक प्रकोप होने पर एनएए 200 पीपीएम वृद्धि होरमोन की 900 मिली प्रति 200 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव कर दें और कलियां आने की अवस्था में जनवरी के महीने में पेड़ के बौर तोड़ देना भी लाभदायक रहता है क्योंकि इससे न केवल आम की उपज बढ़ जाती है। इस बीमारी के आगे फैलने की संभावना भी कम हो जाती है।

(3) चार मिलीलीटर प्लानोफिक्स प्रति नौ लीटर पानी में घोलकर फरवरी-मार्च के महीने में छिड़काव करें।

पत्तों का जलना (Leaf scorching/burning)

उत्तर भारत में आम के कुछ बागों में पोटेशियम की कमी से और क्लोराइड की अधिकता से पत्तों के जलने की गंभीर समस्या है। इस रोग से ग्रसित वृक्ष के पुराने पत्ते दूर से ही जले हुए जैसे दिखाई देते हैं।

रोकथामः इस समस्या से फसल को बचाने के लिए पौधों पर पांच प्रतिशत पोटेशियम सल्फ़ेट के छिड़काव की सिफारिश की जाती है। यह छिड़काव उसी समय करें जब पौधों पर नई पत्तियां आ रही हों। ऐसे बागों में पोटेशियम क्लोराइड उर्वरक प्रयोग न करने की सलाह भी दी जाती है।

उल्टा सुखा रोग/डाई बैक रोग (Dieback)

इस रोग में आम की टहनी ऊपर से नीचे की ओर सूखने लगती है और धीरे-धीरे पूरा पेड़ सूख जाता है। यह फफूंद जनित रोग होता है, जिससे तने की जलवाहिनी में भूरापन आ जाता है और वाहिनी सूख जाती है और जल ऊपर नहीं चढ़ पाता है।

रोकथामः इसके रोकथाम के लिए रोग ग्रसित टहनियों के सूखे भाग से 25 सेमी. नीचे से काट कर जला दें। कटे स्थान पर बोर्डो पेस्ट लगाए और अक्टूबर माह में कॉपर ऑक्सीकलोराइड का 0.3 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें। साथ ही साथ ट्राईकोडर्मा युक्त गोबर की सड़ी खाद चार-पांच किग्रा/पेड़ डालें।

तने से गोंद निकलना (Gummosis)

यह रोग यांत्रिक चोट या रगड़ के कारण होता है, जिससे कि ग्रसित भाग से गोंद निकलना शुरू हो जाता है, इससे उत्पादन पर भी प्रभाव पड़ता है।

रोकथामः ग्रसित भाग हो शार्प चाकू से साफ़ कर लें और कापर ऑक्सीक्लोराइड का 0.3 प्रतिशत घोल का लेप लगाएं अथवा देशी गाय के गोबर का स्लरी बनाकर लेप लगाएं।

झुमका रोग (Mango clustering)

इस रोग में आम का आकार मटर के दाने के बराबर रह जाता है। इसका मुख्य कारण पुष्पावस्था में कीटनाशक का छिड़काव जिसकी वजह से सत प्रतिशत पर-परागण की प्रक्रिया पूर्ण नहीं हुई अर्थात आधा अधूरा ही हुआ जिसके फलस्वरूप फ्रूट सेटिंग नहीं हुआ और आकार मटर के दाने के बराबर ही रह गया।

1) पुष्पावस्था के समय किसी भी प्रकार के कीटनाशक व रोगनाशक का प्रयोग न करें।

(2) कीट आकर्षक फसलें जैसे गेंदा, गुलदाउदी व सरसों आदि का अन्तःफसल लगाएं, जिससे की बाग़ में पर-परागण करने वाले कीट की संख्या बनी रहे।

जायद के मौसम में हरे चारे की उन्नति खेती

डॉ विवेक प्रताप सिंह[1] एवं अवनीश कुमार सिंह[2]

[1]विषय वस्तु विशेषज्ञ पशुपालन, [2]विषय वस्तु विशेषज्ञ सस्य

महायोगी गोरखनाथ कृषि विज्ञान केंद्र, चौकमाफी, पीपीगंज, गोरखपुर उ. प्र.

जायद में पशुओं के लिए हरे चारे की बहुत कमी रहती है जिसका दुधारू पशुओं के स्वास्थ्य एवं दूध उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इस समस्या के समाधान हेतु जायद में बहु कटाई वाली ज्वार, लोबिया, मक्का तथा बाजरा आदि फसलों को चारे के लिए अवश्य बोना चाहिए।

1. बहुकटाई वाली ज्वार

जायद में ज्वार की ऐसी किस्मों की खेती करनी चाहिए जिसमें एच.सी.एन. (एक विष) की मात्रा बहुत कम हो तथा जिन्हें चारे के लिए कई बार काटा जा सकता है।

एस.एस.जी. – 988-898 पी.सी. 23 तथा एम.पी. चरी एस.एस.जी. 59-3ए जे.सी.69 इसके लिए उपयुक्त प्रजातियां हैं।

भूमि

अच्छे जल निकास वाली दोमट, बलुई दोमट भूमि इसकी खेती के लिए उपयुक्त है।

भूमि की तैयारी

पलेवा करके एक जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा 1-2 जुताइयां देशी हल से करना चाहिए। हर जुताई के बाद पाटा लगाना चाहिए।

बुवाई का समय

इसकी बुवाई मार्च के द्विवतीय सप्ताह से अप्रैल के मध्य तक करना चाहिए।

बीज दर

30-40 किग्रा. प्रति हेक्टेयर

बुवाई की विधि

प्रायः इसे छिटकवां बोते हैं। हल के पीछे 25-30 सेमी. की दूरी पर लाइनों में इसकी बुवाई करना अच्छा होता है।

उर्वरक

उर्वरकों का प्रयोग भूमि परीक्षण के आधार पर करें। 30 किग्रा. नत्रजन तथा 30 किग्रा. फास्फोरस बुवाई के समय प्रयोग करें। एक माह बाद 30 किग्रा. नत्रजन खड़ी फसल में दें। प्रत्यके कटान के बाद सिंचाई के उपरान्त ही 30 किग्रा. नत्रजन का दुबारा प्रयोग करें।

खरपतवार नियंत्रण

बोने के तुरन्त बाद 1 किग्रा. एट्राजीन 600 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें। घास की

समस्या का निदान पाने हेतु फसल चक्र अपनाया जायें।

सिंचाई

फसल को वर्षा होने से पूर्व हर 8 से 12 दिन बाद सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है।

कटाई

बवाई के 50-60 दिन बाद हरे चारे के लिए पहली कटाई करना चाहिए। इसके बाद फसल हर 25-30 दिन बाद काटने योग्य हो जाती है। मार्च में बोई गयी ज्वार से सितम्बर के अन्त तक 4 कटाइयां ली जा सकती हैं।

उपज

हरे चारे की उपज प्रति कटाई में 200-250 कु. प्रति हेक्टेयर प्राप्त हो सकती है।

2. लोबिया

लोबिया प्रोटीन युक्त पौष्टिक हरा चारा है। इसमें 17-18 प्रतिशत प्रोटीन पाई जाती है।

भूमि

इसकी इसकी खेती दोमट, बलुई दोमट और हल्की काली मिट्टी में की जाती है।

भूमि की तैयारी

पलेवा करके एक दो जुताइयां देशी हल से करना चाहिए। हर जुताई के बाद पाटा लगाना आवश्यक है जिससे नमी बनी रहे।

उन्नत किस्मे

रशियन जांइट, कोहिनूर, यू.पी.सी. 5286 तथा इगफ्री 450, बुन्देललोबिया-1. बुन्देललोबिया, 2. यू.पी.सी.-4200, ई.सी. -4216 आई.जी.एफ.आर.आई. -450 उपयुक्त प्रजातियां हैं।

बुवाई का समय

जायद में इसकी बुवाई मार्च से अप्रैल तक की जा सकती है।

बीज दर

एकल फसल के लिए 30-40 किग्रा. बीज प्रति हेक्टर पर्याप्त होता है। यदि इसे मक्का (30-40 किग्रा. प्रति हे.) एवं एम.पी. चरी (20-25 किग्रा. प्रति हे.) के साथ मिलाकर लोबिया (10-15 किग्रा. प्रति हे.) बीज का प्रयोग करना चाहिए।

बुवाई की विधि

बीज की बुवाई लाइनों में 25-30 सेमी. की दूरी पर कूंड में बोयें। लोबिया की बुवाई मिलवां खेती में अलग-अलग लाइनों 2:1 अनुपात में होना चाहिए।

उर्वरक

बुवाई के समय 20 किग्रा. नत्रजन तथा 40 से 60 फास्फोरस प्रति हेक्टर देना चाहिए।

सिंचाई

पहली सिंचाई बुवाई के 15 दिन बाद करना चाहिए, मार्च में बोने पर 4-5 सिंचाइयों की आवश्यकता पड़ती है।

कटाई

फली बनने पर कटाई करनी चाहिए।

उपज

कुल उपज लगभग 300-325 कु.प्रति/हेक्टर उपज प्राप्त होती है।

3. मक्का

मक्का का चारा मुलायम होता है तथा पशु इसे स्वाद से खाते हैं। हरे चारे के लिए इसे 50 प्रतिशत जीरा की अवस्था पर काटें, मक्का में चारे के साथ-साथ शिशु मक्का भी प्राप्त होती है।

भूमि

मक्का की खेती दोमट, बलुई दोमट भूमि में सफलतापूर्वक की जा सकती है। यह ऐसी भूमियां हैं जो न तो अम्लीय हो और न क्षारीय हों, भली प्रकार उगती है।

भूमि की तैयारी

पलेवा करके 1-2 जुताइयां देशी हल से करना चाहिए। हर जुताई के बाद पाटा लगाना आवश्यक है।

उन्नत किस्में

चारे के लिए मक्का की अफ्रीकन टाल, जे 1006 एवं प्रताप चारा-6 प्रजाति सबसे अच्छी है। यदि इन किस्मों का बीज न मिले तो संकर, गंगा-11 या कम्पोजिट मक्का, किसान, विजय भी बो सकते हैं। संकर मक्का के द्वितीय पीढ़ी के बीज को भी चारे के लिए बोया जा सकता है।

बीज दर

40-50 किग्रा. प्रति हे. बुवाई के लिए पर्याप्त होता है। मक्का के साथ लोबिया की सहफसली खेती करने पर मक्का 30-40 किग्रा. तथा लोबिया 15-20 किग्रा. बीज की आवश्यकता पड़ती है। इससे चारे की पौष्टिकता बढ़ जाती है।

बुवाई की विधि

जायद में मक्का की बुवाई फरवरी के दूसरे पखवारे से प्रारम्भ की जाती है। बुवाई लाइनों में करते हैं जिससे लाइन की दूरी 20-30 सेमी. होनी चाहिए। सहफसली की दशा में मक्का की प्रत्येक तीन पंक्ति के बाद एक पंक्ति लोबिया की उगाना उचित होगा।

उर्वरक

संकर तथा संकुल किस्मों में 100 किग्रा. नत्रजन तथा 40 किग्रा. फास्फोरस प्रति हे. देना आवश्यक है। नत्रजन की आधी मात्रा तथा फास्फोरस की पूरी मात्रा बुवाई के समय तथा शेष आधी नत्रजन बुवाई के 30 दिन बाद खेत में डालना चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण

बुवाई के तुरन्त बाद 1 किग्रा. एट्राजीन 600-700 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।

सिचाई

आवश्यकतानुसार 12 से 15 दिन के अन्तर पर सिंचाई की जानी चाहिए। फसल को कुल 4-6 सिंचाइयों की आवश्यकता पड़ती है।

कटाई

हरे चारे के लिए उगाई गई फसल की कटाई 50% वाली आने से पहले लगभग 50-55 दिन पर कर लेनी चाहिए।

उपज

अच्छे प्रबन्ध से यह उपज 400-450 कु. हरा चारा प्रति हेक्टेयर हो जाती है।

4. बाजरा

यह एक शीघ्रता से बढने वाली रोग निरोधक तथा अधिक कल्ले फूटने वाली चारे की फसल है। शुष्क एंव अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में इसकी बुवाई की जाती है। यह अकेले अथवा लोबिया के साथ बोई जाती हे।

भूमि

बलुई दोमट भूमि इसकी खेती के लिए अच्छी रहती है।

भूमि की तैयारी

पलेवा करके 2-3 जुताईया देशी हल से करके मिट्टी को भुरभूरी बना लेनी चाहिये। तथा पाटा लगाकर खेतों को सममतल कर लेना चाहियें।

उन्नत किस्में

हरे चारे के लिए संकर बाजरा या कम्पोजिट बाजरा, तथा जाइन्ट बाजरा तथा राज-171, नरेन्द्र चारा बाजरा-2, एल-72 तथा एल-74 राजको अच्छी किस्में हैं। संकर बाजरा की दूसरी पीढ़ी का बीज चारे की बुवाई हेतु प्रयोग किया जा सकता है।

बुवाई का समय

बुवाई मार्च के दितीय पक्ष से अप्रैल के प्रथम पक्ष तक की जा सकती है।

बीज दर

शुद्ध फसल के लिए 8-10 किग्रा० बीज प्रति हे० के लिए पर्याप्त होता है। मिलवां फसल में बाजरा तथा लोबिया 2:1 अनुपात (2 लाइन बाजरा तथा एक लाइन लोबिया) में बोना चाहिए इसके लिए 6-7 किग्रा० बाजरा तथा 12-15 किग्रा० लोबिया बीज की आवश्यकता होती है।

बुवाई की विधि

प्रायः इसकी बुवाई छिटकवां की जाती है परन्तु 30-40 सेमी० दूरी पर लाइनों में इसकी बुवाई करना ठीक रहता है। मिलवां खेती में अच्छी पैदावार के लिए बुवाई लाइनों में अलग-अलग करना चाहिए ताकि बीज भूमि में उचित नमी पर पड़ सके।

उर्वरक

बाजरा के लिए 80 किग्रा० नत्रजन, 40 किग्रा० फास्फोरस प्रति हे० देना चाहिए। नत्रजन की आधी मात्रा बुवाई के समय तथा शेष बुवाई 25-30 दिन बाद देना चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण

संकर कम्पोजिट बाजरा बोने के तुरन्त बाद 1 किग्रा० एट्राजीन 600 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।

सिंचाई

आवश्यकतानुसार फसल को 15-20 दिन के अन्तराल पर पानी देना चाहिए। फसल को कुल 3-4 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है।

कटाई

बाजरे को हरे चारे के लिए 50% बाली निकलने पर काटना चाहिए।

उपज

हरे चारे की औसत उपज 400-500 कुन्तल, प्रति हेक्टेयर हो जाती है।

वर्ष भर हरे चारे के लिये नेपियर घास की खेती

डॉ विवेक प्रताप सिंह[1] एवं अवनीश कुमार सिंह[2]

[1]विषय वस्तु विशेषज्ञ पशुपालन, [2]विषय वस्तु विशेषज्ञ सस्य

महायोगी गोरखनाथ कृषि विज्ञान केंद्र, चौकमाफी, पीपीगंज, गोरखपुर उ. प्र.

गन्ने की भांति दिखने वाली नेपियर घास (पेनीसेटम परप्यूरियम) पोएसी (ग्रेमिनी) कुल की सदस्य है। अधिक ऊंची होने के कारण इसे हाथी घास भी कहते है। पशुओ को वर्ष भर हरा चारा देने वाली अत्यधिक उत्पादन क्षमता वाली संकर नेपियर बाजरा बहुवर्षीय घास है। इस घास में बाजरे के आदर्श गुण जैसे रसीलापन, घनी पत्तियाँ, शीघ्र बढ़वार, उच्च्य प्रोटीन व शर्करा प्रतिशत के अलावा तेज बढ़वार जैसे गुण नैपियर में विद्यमान रहते हैं। नेपियर घास का चारा स्वादिष्ट व पौष्टिक होता है। इसके चारे में औसतन 15-20 प्रतिशत शुष्क पदार्थ तथा 8 से 10 प्रतिशत प्रोटीन होता है। इसके चारे की पाचनशीलता 50-70 प्रतिशत होती है। संकर नेपियर घास, सामान्य नेपियर घास (हाथी घास) से अधिक पौष्टिक एवं उत्पादक होती है। दुधारू पशुओं को लगातार यह घास खिलने से दुग्ध उत्पादन में वृद्धि के साथ साथ उनमे रोग प्रतिरोधक क्षमता विकसित होती है। इस घास को एक बार लगाने के बाद 4-5 वर्ष तक लगातार हरा चारा प्रदान करती है। इस घास को सभी प्रकार की भूमिओं और खेत की मेड़ों पर सुगमता से लगाया जा सकता है।

जलवायु एवं भूमि

गर्म तथा आर्द्र जलवायु वाले क्षेत्र अर्थात् जहाँ तापमान ऊँचा (25 डिग्री सेल्सियस से अधिक), वर्षा अधिक और वायुमण्डल में आर्द्रता की मात्रा अधिक हो, खेती के लिए उपयुक्त रहते हैं। इसकी बढ़वार के लिए मार्च से सितम्बर की अवधि बहुत अनुकूल रहती है। इसकी खेती के लिए 150 सेमी. 200 सेमी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्र सर्वोत्तम है। अत्यन्त शीतल मौसम होने पर (20 डिग्री सेल्सियस से नीचे) इसकी वृद्धि बिल्कुल बन्द हो जाती है पाले से नेपियर को बहुत हानि पहुँचती है। फसल कम तापक्रम में सर्दियों में 2-3 माह तक सुषुप्तावस्था में रहती है। गन्ने की तरह उत्तरी भारत की जलवायु बीज बनने के लिए उपयुक्त नहीं है। जनवरी-फररी में फूल आते हैं पर बीज नहीं बनते। इसलिए नैपियर का प्रशारण वानस्पतिक विधि से किया जाता है।

यह घास उत्तम जल निकास वाली सभी प्रकार की भूमि पर उगाई जा सकती हैं। परन्तु दोमट या बलुई -दोमट मिट्टी सर्वोत्तम मानी जाती है। धान के खेतों की मेड़ पर नेपियर स्थापित करने से पशुओं को हरा चारा उपलब्ध कराया जा सकता है। शुष्क व अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में जहाँ सिंचाई की सुविधा है इसकी खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है।

इसकी बुआई के लिए खेत को अच्छी तरह तैयार कर लेना चाहिए। इसके लिए मिट्टी पलटने वाले हल से गहरी जुताई करके बखर द्वारा मिट्टी को महीन एवं भुरभुरा बना लेना चाहिए। घास लगाने से पहले खेत को समतल किया जाना चाहिए एवं खरपतवार नहींहोने चाहिए।

उन्नत किस्में

नेपियरकी देशी किस्मों की अपेक्षा उन्नत किस्मों से अधिक उपज एवं गुणवत्तयुक्त चारा प्राप्त होता है। इसकी उन्नत किस्मों मे पूसा जायन्ट, एन-बी-21, शक्ति, संकर 1 व 2 आई.जी.एफ.आर.आई.-3 6,7 आदि प्रदेश के लिए उपयुक्त है संकर किस्मो का बीज बाँझ होता है। इनके एक झुँड में 40-50 तक कल्ले बनते हैं। नेपियर की प्रमुख संकर किस्मों की विशेषताएं -

1. पूसा जायन्ट: इस किस्म का विकास पेनीसेटम परप्यूरियम तथा पेनीसेटम टाइफोइडियम (अफ्रीकन बाजरा) के संकरण द्वारा किया गया। यह किस्म नेपियर घास की अपेक्षा उत्तम गुणों वाला दो गुना अधिक चारा देती है साधारण नेपियर घास की तुलना में इसमें 25 प्रतिशत अधिक प्रोटीन और 12 प्रतिशत अधिक शर्करा पायी जाती है। और वृद्धि की सभी अवस्थाओं में इस किस्म का तना अधिक रसीला, मुलायम तथा कम रेशेदार होता है चारा अधिक मुलायम तथा पत्तीदार होता है।

2. एन.बी.-21(नेपियर संकर बाजरा): यह भी संकर किस्म है जिसके पौधे लम्बे, शीघ्र बढ़ने वाले तथा अधिक कल्ले युक्त होते हैं तने पतले तथा रोये रहित होते है। पत्तियाँ लम्बी, पतली तथा चिकनी होती है। प्रथम कटाई बोने के लगभग 50 दिन बाद की जा सकती है। इसके बाद मुख्य वृद्धि मौसम मे 35-40 दिन के अन्तराल पर कटाईयाँ करते हैं। सर्दी मे पौध वृद्धि धीमी हो जाती है एक वर्ष में गभग 160 से 200 टन प्रति हेक्टेयर हरा चारा प्राप्त होता है।

नेपियर की अन्य किस्मों में इंडियन ग्रासलैड एण्ड फोडर रिसर्च इंस्टीट्यूट, झांसी (उ.प्र.) द्वारा विकसित इगफ्री-6 (हरे चारे की उपज 120-130 टन/हे.) इगफ्री-3 (हरे चारे की उपज 110-120 टन/हे.), इगफ्री-7(हरे चारे की उपज 130-160 टन/हे.) तथा यसवन्त (हरे चारे की उपज 130-140 टन/हे.) है जो कि अन्तर्वर्तीय खेती के लिए उपयुक्त है। इनके अलावा इन.बी.37, को.-1 , को.-2, को.-3 किस्में भी अधिक उत्पादन के लिए प्रसिद्ध है।

बोआई/रोपाई का समय

इस घास की बोआई वर्षाधीन क्षेत्रों में मानसून आने पर जून-जुलाई मे तथा सिंचित क्षेत्रो में फरवरी के द्वितीय सप्ताह से लेकर अगस्त तक की जा सकती है। फरवरी-मार्च (बसन्त ऋतु) का समय बोआई के लिए सबसे उत्तम है। मैदानी क्षेत्रों मे नेपियर की बोआई अधिक ठन्डे दिनों को छोड़कर वर्ष भर की जा सकती है।

बीज एवं बोआई

नेपियर घास का प्रसारण वानस्पतिक विधि द्वारा होता है। इसके लिए भूमिगत तने जड़ो के टुकड़े या तनो के टुकड़ो का उपयोग किया जाता है। बोआई से पूर्व तना या राइजोम को छोटे-छोटे टुकड़ों मेंकाटा जाता है। जिससे कि प्रत्येक टुकड़े मे कम-से-कम 2 स्वस्थ कलियाँ अवश्य उपस्थित हों। बोआई 7-8 सेमी. की गहराई पर करते हैं। एक हेक्टेयर रोपाई हेतु 40,000-45,000 टुकड़ों की आवश्यकता होती है।

नेपियर को निम्न विधियों द्वारा तैयार खेत में लगाया जाता हैं।

1. कूड़ों में बोआई: जब खेत में पर्याप्त नमी रहती है, उस समय हल द्वारा 60-90 सेमी. की दूरी पर कूड़ बना कर उसमे 50-60 सेमी. के अन्तर पर टुकड़े बिछा दिये जाते हैं। इसके पश्चात् पाटा चलाकर टुकड़ो की आवश्यकता होती है।

2. टुकड़ों को 45 अंश के कोण का गाड़ना: तैयार खेत मे रस्सी द्वारा कतारें आर-पार बना ली जाती है।

पंक्तियों से पंक्तियो की दूरी 90-100 सेमी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 60 सेमी. तक रखी जाती है। इनके कटान बिन्दुओं पर 45 अंश के कोण पर टुकड़े इस प्रकार गाड़े जाते हैं कि टुकड़े की एक कली भूमि के अन्दर रहती है जो जड़ उत्पन्न करती है तथा दूसरी कली भूमि के ऊपर रहती है जो हवाई शाखाएँ उत्पन्न करती है। टुकड़े लगाने के पश्चात् जड़ के पास की मिट्टी को अच्छी तरह दबाने के तुरन्त पश्चात् सिंचाई कर देते हैं। बाद में कूड़ों पर मिट्टी चढ़ाकर मेंड़ बना दी जाती है।

खाद एव उर्वरक

उर्वरक घास अधिक उपज देने वाली घास है, इसलिए प्रचुर मात्रा में खाद देने की आवश्यकता होती है। नेपियर के लिए 8 से 10 टन गोबर की खाद बुआई के 2 से 3 सप्ताह पहले खेत में डालकर मिट्टी में मिला देनी चाहिए। रोपाई के समय 40-50 किलो नत्रजन तथा 60-80 किलो स्फुर तथा 20-30 किलो पोटाश प्रति हेक्टेयर डालना चाहिए। बाद में 40 किलो नत्रजन प्रति हेक्टेयर हर कटाई के बाद डालने से फसल की पुर्नवृद्धि तेज होती है और उत्पादन भी अच्छा मिलता है। प्रयोगा से ज्ञात हुआ है कि संकर नेपियर के साथ दलहनी चारा फसल उगाने पर 15 किग्रा.नत्रजन/कटाई/हे. देने से सर्वाधिक उपज प्राप्त होती है।

सिंचाई एवं जल निकास

नेपियर लगाने के तत्काल बाद खेत मे पानी लगाना आवश्यक रहता है। गर्मियों में मार्च से जून तक फसल की सिंचाई 8-10 दिन के अंतर पर करनी चाहिए। सर्दी के मौसम में फसल को 15 से 20 दिन के अंतर पर पानी देना चाएिह। इसके अतिरिक्त प्रत्येक कटाई बाद पानी देना आवश्यक है। पानी भरे खेतो मे पौधे मर जाते हैं। अतएव खेत मे जल निकास का समुचित प्रबन्ध होना चाहिए।

निराई-गुड़ाई

नेपियर घास रोपने के 15 दिन बाद अन्धी गुड़ाई करनी चाहिये। प्रत्येक कटाई के बाद दो कतारों के बीच देशी हल या कल्टीवेटर द्वारा गुड़ाई करने से भूमि की जलधारण क्षमता में वृद्धि होने के साथ साथ खरपतवार की समस्या नही रहती है इससे पुरानी जड़ों की छँटाई भी हो जाती है जिससे नई जड़ों का विकास एवं प्रसार होता है। अतः फसल बढ़वार अच्छी होती है।

फसल पद्धति

वर्ष पर्यन्त हरा चारा प्राप्त करने के लिए नेपियर के साथ सहफसली या अन्तर्वर्ती खेती लाभदायक रहती है। अतः मिश्रित खेती में नेपियर घास की दो कतारों के मध्य खरीफ में लोबिया या ग्वार तथा रबी में बरसीम या लूर्सन उगाया जाता है। इससे उपज व उसकी गुणवत्ता और पाचनशीलता में सुधार होता है। नेपियर घास मे आक्सेलिक अम्ल रहता है जो कि पशुओं के लिए हानिकारक पाया गया है परंतु नेपियर चारे के साथ दलहर चारो को मिलाकर खिलाने से इस दुष्प्रभाव से बचा जा सकता है। संकर नेपियर + बरसीम-लोबिया फसल चक्र से एक वर्ष में 200 टन हरा चारा तथा 52 टन सूखा चारा प्रति हेक्टेयर प्राप्त होता है।

कटाई एवं उपज

सामान्य तौर पर नेपियर घास प्रथम कटाई के लिए रोपाई के लगभग 50-60 दिन पश्चात् तैयार हो जाती है तथा इसके बाद 35-45 दिन के अन्तराल से अन्य कटाईयां करना चाहिए। पौधे लगभग जमीन से 8-10 सेंटीमीटर की ऊँचाई से इसे चारे के लिए काटना चाहिए। एक बार उगाई गई फसल 3-4 वर्ष तक अच्छा

चारा दे सकती है इस घास को 1-1.5 मीटर ऊँचाई पर ही काट लेना चाहिए। अधिक बढ़ने पर कटाई करने से पौधे सख्त हो जाते हैं और चारा अधिक रेशेदार हो जाता है, जिससे पशु उसे कम खाते हैं। सामान्य अवस्थाओं में नेपियर घास से प्रतिवर्ष 6-8 कटाईयां मिल जाती है। जिससे लगभग 150 से 200 टन हरा चारा (संकर किस्मों से) प्राप्त किया जा सकता है।

मत्स्य आहार भंडारणएंव गुणवत्ता

डा.ज्ञानदीप गुप्ता, डा.एल.सी.वर्मा एवं प्रो.ए.पी.राव

एएनडीयूएटी-कृषि विज्ञान केन्द्र, पिलखी, मऊ एवं निदेशक प्रसार

भारत में, खाद्यान्न छोटे किसानों द्वारा पारंपरिक संरचनाओं का उपयोग करके संग्रहित किया जाता है। भंडारण की कमी के कारण मात्रा और गुणवत्ता दोनों का नुकसान होता है। मत्स्य आहार की गुणवत्ता और मछलियों की वृद्धि के बीच महत्वपूर्ण संबंध है और इसमें न केवल सभी आहार घटकों की मात्रात्मक मात्रा शामिल है, बल्कि उन घटकों की पाचनशक्ति और उपापचय भी शामिल है। आहार की मात्रा में कमी, कीड़े, कृन्तकों, घुन, पक्षियों और सूक्ष्मजीवों के कारण होती है। गुणवत्ता हानि का मुख्य कारण नमी में वृद्धि, मुक्त फैटी एसिड का स्तर, पीएच और प्रोटीन सामग्री आदि है। अच्छा मछली आहार प्रबंधन पालन की लागत को कम कर सकता है और मछली के स्वस्थ विकास को सुनिश्चित कर सकता है। वजन की मात्रा में कमी, गुणवत्ता हानि, स्वास्थ्य जोखिम और आर्थिक नुकसान से बचने के लिए उचित भंडारण आवश्यक है।

सामग्री और आहार का भंडारण-

भंडारण करते समय प्रमुख समस्याओं का सामना करना पड़ता हैः

1. कीड़े
2. कृंतक और पक्षी
3. सूक्ष्म जीव
4. फीड स्टफ में खराब होने वाले बदलाव

कीड़े मकोडे

कीड़े ज्यादातर आहार अवयवों को खाते है और उन्हें मल, शरीर के अंगों, गंध और सूक्ष्म जीवों से दूषित करते हैं। अनाज के सबसे विनाशकारी कीड़े भृंग और पतंगे हैं, और ये पूरे आहार भण्डार को नष्ट करने में सक्षम हैं।

कीट संक्रमण द्वारा खाद्य सामग्रियों को प्रभावित करने वाले कारक

अधिकांश कीट प्रजातियों की जनसंख्या वृद्धि को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक हैंः

- तापमान,
- सापेक्षिक आर्द्रता और
- फीड घटक की नमी

खाद्य सामग्री में उच्च्य नमी (16 प्रतिशत या अधिक) कीड़ो के संक्रमण को आकर्षित करती हैं। ये आहार को नरम बनाते है और संक्रमण के लिए अतिसंवेदनशील बनाते हैं।

तापमान

अधिकांश कीट की प्रजातियांउष्णकटिबंधीय हैं, लगभग 28 डिग्री सेल्सियस के इष्टतम तापमान

जरुरी है।

सापेक्षिक आर्द्रता

कीट की वृद्धि 70 प्रतिशत सापेक्ष आर्द्रता तक होती है। 70प्रतिशत सापेक्ष आर्द्रता से परे मोल्ड गठन में सेट होता है और स्थिति को जटिल करता है।

नियंत्रण

- भारी रूप से संक्रमित सामग्री को स्टोर में नहीं लाया जाना चाहिए।
- संक्रमित सामग्री, यदि स्वीकार की जाती है, तो कीट पतंगों को को पूरी तरह से खत्म करने के लिए फ्यूमिगेट (जितनी जल्दी हो सके) किया जाना चाहिए।

कृंतक और पँछी

कृंतक (चूहे) फीड का सेवन करते हैं और इसे मलमूत्र, बाल और शवों द्वारा दूषित करते हैं। पक्षी उत्सर्जन और पंखों द्वारा फीड को दूषित करते हैं। प्रत्येक पक्षी औसतन 25 ग्राम अनाज दिन का उपभोग कर सकता है।

सूक्ष्म जीव

सूक्ष्म जीवों (बैक्टीरिया और फफूंद) की वृद्धि के के लिए अनकूल परिस्थित जैसे कि सापेक्ष आर्द्रता 70 से 90 प्रतिशत, नमी की मात्रा (15 से 20 प्रतिशत) और तापमान 35-45 डिग्री सेल्सियस है।

संग्रहीत फीडस्टफ पर कवक के मुख्य प्रभाव हैंः

(अ) मायकोटॉक्सिन उत्पादन,

(ब) तापमान और नमी में वृद्धि, और

(स) फफूंदी के गन्ध

नियंत्रण

- कीट का सफल नियंत्रण।
- सोडियम प्रोपियोनेट और जेंटियन वायलेट का उपयोग।

संग्रहित खाद्य सामग्री और आहार (फीडस्टफ)में होने वाले परिवर्तन

अधिकांश संग्रहित फीडस्टफ में रासायनिक परिवर्तनों के कारण स्वाद और पोषक मूल्य में परिवर्तन होते हैं। प्रमुख होने वाले परिवर्तन हैंः

- वासित होना (रेंसिडिटी)
- पोषक तत्वों और विटामिन की कमी

प्रभावित करने वाले कारक

- पर्यावरणीय कारकः परिवेश का तापमान और सापेक्ष आर्द्रता
- कीड़े और सूक्ष्म जीव
- रासायनिक परिवर्तन

वासित होना (रेंसिडिटी)-

संग्रहीत फीडस्टफ में होने वाला महत्वपूर्ण परिवर्तन, लिपिड ऑक्सीकरण है, जिसके परिणामस्वरूप होने वाली रैंसिडिटी सबसे अधिक होती है। रैंसिडिटी बदबू और विषाक्त यौगिकों को उत्पन्न करने में योगदान करते हैं।

संग्रहीत फीडस्टफ में लिपिड ऑक्सीकरण की दर को बढ़ाने वाले मुख्य कारक इस प्रकार हैंः

(अ) **एंजाइमः** लिपोक्सिडेस औरअन्य एंजाइमों की उपस्थिति

(ब) **हेमेटिनः** मछली और मांस के भंडारण में महत्वपूर्ण है

(स) **पेरोक्साइड्सः** लिपिड के ऑक्सीकरण को उत्प्रेरित करता है

(द) **प्रकाशः** अल्ट्रा वायलेट प्रकाश फोटोलिसिस में शामिल होता है

(इ) **उच्च तापमानः** उच्च भंडारण तापमान लिपिड ऑक्सीकरण की दर को बढ़ता है

नियंत्रण

एंटी-ऑक्सीडेंट को मिलाकर लिपिड ऑक्सीकरण को रोका जा सकता है। दो आमतौर पर इस्तेमाल किए जाने वाले एंटी-ऑक्सीडेंट एथोक्सीक्विन और ब्यूटाइल हाइड्रॉक्सिटोलुइन हैं जो ऑक्सीकरण प्रक्रियाओं के दौरान बनने वाले मुक्त कणों को रोकते हैं। अनाज के दानों में प्राकृतिक एंटी-ऑक्सीडेंट (जैसे टोकोफेरॉल) की प्रभावी मात्रा होती है, जो कि उनके लिपिड पदार्थों में काफी स्थिरता प्रदान करते हैं।

भण्डारण की अवधि

मछली का आहार खराब होने वाले पोषक तत्वों से बनाहोता है इसलिए भंडारण की अवधि न्यूनतम रखी जानी चाहिए और पर्याप्त परिस्थितियों में भण्डारण करना चाहिए। आहार (फीड) संग्रहण अवधि कुछ घंटों से लेकर छह महीने तक हो सकती है। कम नमी वाले शाकाहारी फीड और ड्राई पेलेट फीड को ढकी हुई ठंडी सूखी जगह पर भण्डारण (स्टोर) करने पर दो से तीन महीने तक रखा जा सकता है। -20 डिग्री सेल्सियस से कम तापमान पर संग्रहीत होने पर उच्च नमी वाली कचरा मछली आहार और नम पेलेट फीड लगभग एक सप्ताह तक रखा जा सकता है, अन्यथा उन्हें खरीद के तुरंत बाद इस्तेमाल किया जाना चाहिए।

आहार भण्डारण की आवश्यकताएं

- उच्च तापमान, आर्द्रता, नमी, कीड़े और कृन्तकों के खिलाफ संरक्षण।
- फर्श, दीवारों की सतह, प्रभावी रूप से नमी रहित होना चाहिए, और फीड वाले बैग हमेशा लकड़ी के पट्ट्लो पर संग्रहित किए जाने चाहिए।
- आदर्श रूप से, नम व अर्ध-नम राशन को प्रशीतन के तहत संग्रहीत किया जाना चाहिए या विटामिन के नुकसान से बचने के लिए उसी दिन उपयोग किया जाता है।
- उच्च तापमान और प्रत्यक्ष सूर्य के प्रकाश से बचने के लिए, सूखा हवादार स्थितियों के तहत सूखे पेलेटेड फीड को संग्रहित किया जाना चाहिए।

वसा और तेल का भण्डारण

वनस्पति तेल के कंटेनरों को केवल एक वर्ष तक रखना चाहिए। हालांकि, एक बार खोला और हवा के संपर्क में आने के बाद, तेल ऑक्सीकरण करना शुरू कर देता है। नाइट्रोजन वातावरण में या बहुत कम

तापमान पर संग्रहितकरें। वनस्पति तेल को उपयोग से कुछ समय पहले ही आहार में एंटीऑक्सीडेंट जैसे कि विटामिन ई, टोकोफेरॉल, सिंथेटिक एथोक्सीक्विन या तृतीयक ब्यूटाइल हाइड्रोक्विनोन (टीबीएचक्यू) को मिलाना चाहिए।

मिश्रित फीड का भण्डारण

- फीड की नमी 12 प्रतिशत से कम होनी चाहिए। फीड को बंद थैलियों में कृंतक और कीट रहित सूखी जगह में रखना चाहिए।
- फीड बनाते समय एंटीऑक्सिडेंट मिलाना चाहिए
- यदि कोई एंटीऑक्सिडेंट नहीं मिलाया जाता है, तो सीमित समय के लिए ठंडे स्थान पर रखना चाहिए।
- विटामिन सी (एस्कॉर्बिक एसिड) केवल कुछ दिनों के लिए स्थिर होता है, अतः व्यावसायिक रूप से उपलब्ध एस्कॉर्बिक एसिड फॉस्फेट, विटामिन सी का स्थिर रूप है, उपयोग करना चाहिए ।
- सभी विटामिन प्रदान करने के लिए आहार में विटामिन प्रीमिक्स शामिल करें।

निष्कर्ष

भंडारण एक महत्वपूर्ण कदम है क्योंकि उत्पादित कुल फीड को भण्डारित या पूरी तरह से बेचा नहीं जा सकता है। फिश फीड की गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए उचित भंडारण की स्थिति और अच्छी हैंडलिंग महत्वपूर्ण है। अच्छी गुणवत्ता वाली मछली फीड बेहतर विकास उत्तरजीविता प्रदान करती है और बदले में किसानों को बेहतर लाभ प्रदान करती है।

फसल अवशेष जलाने से नष्ट होती है भूमि की उर्वराशक्ति

डा. एल. सी. वर्मा, डा. चंदन सिंह एवं लाल पंकल सिंह
वरिष्ठ वैज्ञानिक एण्ड हेड, एवं एस. एम. एस. के.वी.के. मऊ

भारत में पहले खेती केवल जीविकोपार्जन के लिये की जाती थी लेकिन धीरे-धीरे खेती ने व्यवसाय का रूप ले लिया है। किसान अधिक उपज प्राप्त करने के लिये अन्धाधुन्ध रासायनिक उर्वरक, कीटनाषकों का प्रयोग कर रहा है जिससे मृदा के साथ-साथ पर्यावरण पर भी हानिकारक प्रभाव हो रहा है फसल अवशेष को जलाना भी एक पर्यावरण तथा मृदा प्रदूषण का महत्वपूर्ण कारण है। पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है, जसमें कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन प्रकृति से प्राप्त होता है ये तत्व पौधों के लगभग 95 प्रतिशत भाग के निर्माण में सहायक होते हैं। उक्त के अतिरिक्त नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश, कैल्सियम, मैगनीशियम, सल्फर, तथा सूक्ष्म पोषक तत्व के रूप में लोहा, जिंक, आयरन, बोरान, मालिब्डेनम, कापर, क्लोरीन तत्व पौधों के बढ़वार एवं उत्पादन में सहायक होते हैं।

उक्त से स्पष्ट है कि पौधों के विभिन्न अंगों (जड़, तना, फूल, फल, दाना आदि) के बढ़ने हेतु उक्त पोषक तत्व पौधों के जड़ों, पत्तियों, तनों द्वारा मृदा से अथवा वातावरण से ग्रहण करते हैं। जब किसान खरीफ, रबी और जायद की फसलों की कटाई, मड़ाई करते हैं तो जड़, तना पत्तियों के रूपों में पादप अवशेष भूमि के अन्दर एवं भूमि के ऊपर उपलब्ध होते हैं।

पिछले कुछ वर्षो में एक समस्या मुख्य रूप से देखी जा रही है कि जहाँ हार्वेस्टर के द्वारा फसलों की कटाई की जाती है उन क्षेत्रों में फसल के तने के अधिकतर भाग खेत में खड़े रह जाते हैं तथा वहाँ के किसान खेत में फसल के अवशेषों को आग लगाकर जला देते हैं।

क्या है फसल अवशेष

फसल अवशेष पौधे का वह भाग होता है जो फसल की कटाई और मड़ाई के बाद खेत में छोड़ दिया जाता है। भूसा, तना, डंठल, पत्ते व छिलके आदि फसल अवषेष कहलाते हैं। सरसों, गेहूँ, धान, ज्वार, मूँग, बाजरा, गन्ना व अन्य दूसरी फसलों से काफी मात्रा में फसल अवशेष मिलते हैं। सबसे ज्यादा फसल अवशेष अनाज वाली फसलों में तथा सबसे कम अवशेष दलहनी फसलों मिलते हैं।

खरीफ सीजन में 500 लाख टन फसल अवशेष का उत्पादन होता है। फसल के अवशेषों का सिर्फ 22 प्रतिशत ही इस्तेमाल होता है। फसलों की कटाई के मौसम में फसल अवशेषों को जलाने तथा इसके मानव स्वास्थ्य पर हो रहे दुष्प्रभाव की खबरें प्रायः अखबारों की सुर्खियॉ बनी रहती हैं। वास्तव में ये एक गम्भीर समस्या है इसके लिये बहुत हद तक खेती की परम्परागत शैली जिम्मेदार है। आपको इस बात की वानगी देखनी है तो पंजाब के गाँवों की ओर रूख करना होगा जहाँ पर फसल की कटाई के बाद बचे अवशेष जलाने से हवा में लगातार जहर घुल रहा रहा है।

इससे न केवल राज्य के वातावरण में प्रदूषण के स्तर में इजाफा होता है बल्कि स्वास्थ्य पर भी

प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। वर्ष 2014 और 2016 में फसल अवशेषों को हरियाणा तथा पंजाब में जलाने से दिल्ली को प्रदूषण का सामना करना पड़ा था। वह किसी से अछूता नहीं है। चारो तरफ धुएं के कारण घर से बाहर निकलना भी दूभर हो गया था। पंजाब के ज्यादातर गाँवों में चाहे वह गेहूँ या धान की फसल हो, कटाई के अन्त में पूरे इलाके में धुएं की चादर फैल जाती है। चारो ओर जहर घुलता धुआँ का साम्राज्य होता है। इन स्थानों पर किसान अगली फसल के लिये खेत को तैयार करने से पहले अवाँछित पौधे के अवशेषों से छुटकारा पाने के लिये खेत में मौजूद फसल की खूँटी जलाने का विकल्प चुनते रहे हैं। इस पर ज्यादातर किसान कहते हैं कि ये प्रकिया एक मात्र व्यवहारिक विकल्प है क्योंकि मशीनों का इस्तेमाल करते हुये वैज्ञानिक तरीके से बची हुई फसल की खूँटी अवशेषों का प्रबन्धन करना बहुत मँहगा है।

फसल अवशेषों को खेत में जलाने से खेतों पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव

- प्रति एकड़ 400 किग्रा लाभकारी कार्बन जलकर नष्ट हो जाता है।
- नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश व सल्फर के रूप में अति उपयोगी पोषक तत्व जलकर नष्ट हो जाते हैं।
- प्रति ग्राम मिट्टी में उपलब्ध 10 - 40 करोड़ लाभकारी बैक्टीरिया, 1-2 लाख लाभकारी फफूँद नष्ट हो जाते हैं।
- प्रति एकड़ 18 कुन्तल चारा भूसा जलकर नष्ट हो जाता है, जिसकी कीमत वर्तमान में लगभग रू0 25000 होगी।
- जब खेत में आग लगायी जाती है तो खेत की मिट्टी उसी प्रकार जलती है जैसे ईट भट्ठे की ईट जलती है। खेत का तापमान बढ़ने से उसमें पाये जाने वाले लाभकारी जीव जैसे जैविक फर्टिलाइजर-राइजोबियम, अजोटोबैक्टर, एजोस्पाइरिलम, ब्लू ग्रीन एल्गी तथा पी.एस.बी. जीवाणु जो भूमि में नाइट्रोजन स्थिरीकरण करते हैं सब जलकर नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त लाभदायक जैविक फफूँदनाशी - ट्राइकोडर्मा, जैविक कीटनाशी- विबैरिया बैसियाना, वैसिलस थिरूनजनेसिस तथा किसान का मित्र कहा जाने वाला केचुआ आग की लपटों से जलकर नष्ट हो जाते हैं।

फसल अवशेष को जलाने से निम्नलिखित दुष्प्रभाव पड़ते हैं।

1. फसल अवशेष जलाने से बढ़ रहा है ग्लोवल वार्मिंग- अवशेषों के जलने से ग्लोवल वार्मिंग के खतरे को बल मिलता है।
2. ग्रीन हाउस प्रभाव - फसल अवशेष जलाने से ग्रीन हाउस प्रभाव पैदा करने वाली व अन्य हानिकारक गैसों मीथेन, कार्बन मानोआक्साइड, नाइट्रस आक्साइड और नाइट्रोजन के अन्य आक्साइड का उत्सर्जन होता है। इससे पर्यावरण प्रदूषित होता है तथा इसका प्रभाव मानव और पशुओं के अलावा मिट्टी के स्वास्थ्य पर भी पड़ता है।
3. मृदा के भौतिक गुणों पर प्रभाव- फसल अवशेषों को जलाने के कारण मृदा ताप में बृद्धि होती है। जिसके फलस्वरूप मृदा सतह सक्त हो जाती है एवं मृदा की सघनता में वृद्धि होती है। साथ ही मृदा जल धारण क्षमता में कमी आती है तथा मृदा में वायु संरक्षण पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

4. मृदा पर्यावरण पर प्रभाव- फसल अवशेषों को जलाने से मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीवों की संख्या पर बुरा प्रभाव पड़ता है और फसल अवशेष जलाये जाने से मिट्टी की सर्वाधिक सक्रिय 15 सेमी तक की परत में सभी प्रकार के लाभदायक सूक्ष्म जीवों का नाश हो जाता है। फसल अपशिष्ट जलाने से केचुयें, मकड़ी जैसे मित्र कीटों की संख्या कम हो जाती है। इससे हानिकारक कीटोंनाशकों का इस्तेमाल करना आवश्यक हो जाता है। इससे खेती की लागत बढ़ जाती है।
5. मृदा में उपस्थित पोषक तत्वों की कमी- फसल अवशेषों को जलाने के कारण मिट्टी में पाये जाने वाले पोषक तत्व जैसे-नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश एवं सल्फर नष्ट हो जाते हैं। इससे मिट्टी की उर्वराशक्ति कम हो जाती है। एक टन धान के पुआल को जलाने से 5.5 किग्रा नाइटोजन, 2.3 किग्रा फास्फोरस, 25 किग्रा पोटैशियम तथा 1.2 किग्रा सल्फर नष्ट हो जाता है।
6. जनवरों के लिये चारे की कमी- फसल अवशेषों को पशुओं के लिये सूखे चारे के रूप में प्रयोग किया जाता है अतः फसल अवशेषों को जलाने से पशुओं को चारे की कमी का सामना करना पड़ता है।
7. अग्निकाण्ड होने की संभावना

जहाँ पर कम्बाइन का प्रयोग फसलों के कटाई में करते हैं वहाँ पर फसलों के अवशेष डण्ठल के रूप में खड़े होते हैं एवं उनके जलाने पर नजदीक के किसानों के फसलों में आग लगने की संभावना बनी रहती है जिससे खड़ी फसल एवं आबादी में अग्निकाण्ड होने की संभावना बनी रहती है, वहीं आस-पास के खेत व खलिहान तथा मकान में भी अग्निकाण्ड के कारण अत्यधिक नुकसान उठाना पड़ता है।

फसल अवशेषों को खेत की मिट्टी में मिलाने से लाभ-

फसल अवशेषों को यदि 20 किग्रा यूरिया प्रति एकड़ की दर से मिट्टी पलटने वाले हल/रोटावेटर से जुताई के समय मिला देने से पादप अवशेष लगभग 20 से 30 दिन के भीतर जमीन में सड़ जाते हैं। फलस्वरूप फसलों के उत्पादन पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। यदि भूमि में उक्त विधि से पादप अवशेष मिलाते हैं तो निम्नलिखित लाभ होते हैं-

कार्बनिक पदार्थ की उपलब्धता में वृद्धि

कार्बनिक पदार्थ ही एकमात्र ऐसा स्रोत है जिसके द्वारा मृदा में उपस्थित विभिन्न पोषक तत्व फसलों को उपलब्ध हो पाते हैं तथा कम्बाइन द्वारा कटाई किये गये प्रक्षेत्र उत्पादित अनाज की तुलना में लगभग 1.29 गुना अन्य फसल अवशेष होते हैं। ये खेत में सड़कर मृदा कार्बनक पदार्थ की मात्रा में वृद्धि करते हैं। जैविक कार्बन की मात्रा बढ़ती है पोषक तत्वों की उपलब्धता में बृद्धि, फसल अवशेष से बने खाद में पोषक तत्वों का भण्डार होता है। फसल अवशेषों में लगभग सभी आवश्यक पोषक तत्वों के साथ 0.45 प्रतिशत नाइट्रोजन की मात्रा पायी जाती है जो कि एक प्रमुख पोषक तत्व है।

मृदा के भौतिक गुणों में सुधार

मृदा में फसल अवशेषों को मिलाने से मृदा की परत में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ने से मृदा सतह की कठोरता कम होती है तथा जल धारण क्षमता एवं मृदा में वायु संचरण में वृद्धि होती है। भूमि से पानी के भाप बनकर उड़ने में कमी आती है।

मृदा की उर्वरा शक्ति में सुधार

फसल अवशेष को मृदा में मिलाने से मृदा के रासायनिक गुण जैसे उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा, मृदा की विद्युत चालकता एवं मृदा पी एच में सुधार होता है तथा फसल को पोषक तत्व अधिक मात्रा में मिलते हैं।

मृदा तापमान

फसल अवशेष भूमि के तापमान को बनाये रखते हैं। गर्मियों में छायांकन प्रभाव के कारण तापमान कम होता है तथा सर्दियों में गर्मी का प्रवाह ऊपर की तरफ कम होता है जिससे तापमान बढ़ता है।

फसल उत्पादकता में वृद्धि

भूमि में खरपतवारों के अंकुरण व बढ़वार में कमी होती है। फसल अवशेषों को मृदा में मिलाने पर आने वाली फसलों की उत्पादकता में भी काफी मात्रा में वृद्धि होती है।

फसल अवशेष में पाये जाने वाले पोषक तत्व

क्रमांक	फसल अवशेष	नत्रजन प्रतिशत	फास्फोरस प्रतिशत	पोटाश प्रतिशत
1	गेहूँ का भूसा	0.53	0.10	1.10
2	जौ का भूसा	0.57	0.26	1.20
3	गन्ने की पत्ती	0.35	0.10	0.60
4	गन्ने की खोई	2.25	0.12	-
5	धान का पुआल	0.36	0.08	0.70
6	राई/सरसों का तना	0.57	0.28	1.40
7	मक्का का कड़वी	0.47	0.57	1.65
8	बजरे की कड़वी	0.65	0.75	2.50
9	धान की भूसी	0.40	0.25	0.40
10	मूँगफली का छिलका	0.70	0.48	1.40
11	आलू पत्तियाँ	0.52	0.09	0.85
12	मटर की सूखी पत्तियाँ	0.35	0.12	0.36
13	करंज की सूखी पत्तियाँ	2.65	0.41	2.42
14	वृक्षों की सुखी पत्तियाँ	1.50	0.45	2.50

खेत के अन्दर सस्यावशेष प्रबन्धन (In situ Management of Crop Residues)

फसल की कटाई के बाद खेत में बचे अवशेष घास, फूंस, पत्तियाँ व ठूंठ आदि को सड़ाने के लिये किसान भाई फसल को काटने के पश्चात 20-25 किग्रा नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़क कर कल्टीवेटर या रोटावेटर से काटकर मिट्टी में मिला देना चाहिये इस प्रकार अवशेष खेत में विघटित होना प्रारम्भ कर देंगे तथा लगभग एक माह में स्वयं सड़कर आगे बोई जाने वाली फसल को पोषक तत्व प्रदान

कर देंगे क्योंकि कटाई के पश्चात दी गयी नाइट्रोजन अवशेषों में सड़न की क्रिया को तेज कर देती है। अगर फसल अवशेष खेत में ही पड़े रहे तो फसल बोने पर जब नई फसल के पौधे छोटे रहते हैं तो वह पीले पड़ जाते है क्योंकि उस समय अवशेष के सड़ाव में जीवाणु भूमि की नाइट्रोजन का उपयोग कर लेते हैं जिस कारण प्रारम्भ में फसल पीली पड़ जाती है। अतः फसल अवशेष का प्रबन्धन करना अत्यन्त आवश्यक है तभी हम अपनी जमीन में जीवांश्म पदार्थ की मात्रा में वृद्धि कर जमीन को खेती योग्य सुरक्षित रख सकते हैं।

निष्कर्ष

अतः प्रदेश के कृषकों से अनुरोध है कि किसी भी फसल के अवशेष को जलायें नहीं बल्कि मृदा में कार्बनिक पदार्थो की वृद्धि हेतु पादप अवशेषों को मृदा में मिलावें/सड़ावें। फसलों की कटाई यदि कम्बाइन मशीन से की जाती है तो किसान भाई रीपर युक्त कम्बाइन मशीन का ही प्रयोग करें।

गेहूँ के फसल का अवशेष प्रबंधन

एकीकृत कृषि प्रणाली से होंगे किसान समृद्ध

श्री आशीष कुमार सिंह
प्रक्षेत्र प्रबन्धक, महायोगी गोरखनाथ कृषि विज्ञान केन्द्र

परिचय

एकीकृत कृषि प्रणाली में कृषि के विभिन्न घटक जैसे फसल उत्पादन, मवेशी पालन, फल तथा सब्जी उत्पादन, मधुमखी पालन, वानिकी इत्यादि को इस प्रकार समेकित किया जाता हैं, वे एक दूसरे के पूरक हो जिससे संसाधनों की क्षमता, उत्पादकता एवं लाभप्रदता में पर्यावरण को सुरक्षित रखते हुए अशातित वृद्धि की जा सके इसे एकीकृत कृषि प्रणाली कहते है।

एकीकृत कृषि प्रणाली एक स्व-सम्पोषित प्रणाली है इसमें अवशेषों के चक्रीय तथा जल एवं पोषक तत्वों आदि का निरंतर प्रवाह होता रहता है जिससे कृषि लागत में कमी आती है और किसानों की आय में वृद्धि होती है तथा साथ ही साथ रोजगार भी मिलता है।

एकीकृत कृषि प्रणाली में एक उद्यम की दूसरे उद्यम पर अंर्तनिर्भरता समन्वित कृषि प्रणाली की मूल-भावना एक उद्यम की दूसरे उद्यम अंर्तनिर्भरता पर आधारित है। इस प्रकार समेकित कृषि प्रणाली में विभिन्न घटकों को एक निश्चित अनुपात में रखा जाता है जिससे विभिन्न उद्यम आपस में परस्पर सम्पूरक एवं सहजननात्मक संबंध स्थापित करके कृषि लागत में कमी लाते हुए किसानों की आय एवं रोजगार में वृद्धि होता है।

एकीकृत कृषि प्रणाली की आवश्यकता

हमारे देश में जनसँख्या वृद्धि एक प्रमुख समस्या हैं जहाँ एक तरफ किसान के पास सीमित कृषि योग्य भूमि है वहीँ दूसरी तरफ सीमित संसाधनों से ही किसान को कृषि से अधिक से अधिक उपज प्राप्त हो सके जिसके लिए रसायनो का उपयोग कृषि में दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है जिसके कारण पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है।

फसलों का उत्पादन अधिकतर मौसम आधारित होने के कारण विपरीत मौसम परिस्थितियों में आशान्वित कृषि उपज प्राप्त नही हो पाती। जिसके कारण किसानों की आमदानी पर प्रभाव पड़ता है जो की आर्थिक व सामाजिक दृष्टिकोण से भी किसानों को प्रभावित करता है । अतः यह आवश्यक हो गया है की कृषि में फसल के साथ साथ अन्य घटको को भी समेकित किया जाए जिससे किसान को सतत आय मिलती रहे साथ ही विभिन्न घटको के अवशेषों को भी संसाधनों के रूप में पुनर्चक्रण किया जाए जो पर्यावरण की दृष्टि से भी लाभकारी हो।

एकीकृत कृषि प्रणाली के मूल सिद्धांत

एकीकृत कृषि प्रणाली मूलतः इस सिद्धांत पर आधारित है कि इसमें समेकित घटक के बीच में परस्पर प्रतिस्पर्धा अधिक न हो और परस्पर पूरकता अधिक से अधिक हो और इसमें कृषि-अर्थशास्त्रीय प्रबन्धन के परिष्कृत नियमों का उपयोग करते हुए किसानों की आमदनी, पारिवारिक पोषण के स्तर और

पारिस्थितिकीय प्रणाली से मिलने वाले लाभ सतत और पर्यावरण की दृष्टि से भी अनुकूल हो।
इनके साथ ही जैव विविधता का संरक्षण, खेती की प्रणाली में विविधता और अधिकतम मात्र में पुनर्चक्रण करना इस प्रणाली हेतु मूलरूप से आवश्यक है।

एकीकृत कृषि प्रणाली के प्रमुख घटक

मिट्टी की उर्वरता को बनाए रखना और प्राकृतिक संसाधनों के कारगर उचित प्रबन्धन से खेत को टिकाऊ आधार प्रदान करना। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित तथ्य समाहित हैंः

मृदा प्रबंधनः मिट्टी को उपजाऊ बनाना रसायनों का आवश्यकतानुसार उपयोग, फसली अपशिष्ट का पलवार के रूप में उपयोग करना, जैविक और जैव उर्वरकों का उपयोग करना, फसलों को अदला-बदली करके बोना और उनमें विविधता, जमीन की जरूरत से ज्यादा जुताई न करना और मिट्टी को हरित आवरण यानी जैव पलवार से ढँककर रखना।

तापमान प्रबन्धन: जमीन को आच्छादित यानी ढँककर रखना, पेड़-पौधे और बाग लगाना और खेतों की मेढ़ों पर झाड़ियाँ उगाना।

जल उपयोग एवं संरक्षणः वर्षा जल संग्रहण हेतु टांका ,जल होज, इत्यादि का निर्माण क्र जल को संगृहीत कर के उपयोग में लाया जा सकता है।

ऊर्जा दक्षताः विभिन्न प्रकार की फसल प्रणालियों और अन्य पेड़-पौधे उगाकर पूरे साल जमीन को हरा-भरा बनाए रखना।

कृषि आदान में आत्मनिर्भरता: अपने लिये बीजों का अधिक-से-अधिक उत्पादन करना, अपने खेतों के लिये खाद कम्पोस्ट खाद बनाना, वर्मी कम्पोस्ट, वर्मीवॉश, तरल खाद और वनस्पतियों का रस बनाना।

जैवविविधता संरक्षणः विभिन्न प्रकार के जैव-रूपों के लिये पर्यावास का विकास, स्वीकृत रसायनों का कम-से-कम उपयोग और पर्याप्त विविधता का निर्माण।

पशुपालन: मवेशी कृषि प्रबन्धन के महत्त्वपूर्ण घटक हैं और उनके न सिर्फ कई तरह के उत्पाद मिलते हैं बल्कि वे जमीन को उपजाऊ बनाने के लिये पर्याप्त मात्र में गोबर और मूत्र भी उपलब्ध कराते हैं।

नवीकरणीय स्रोत ऊर्जाः सौर ऊर्जा, बायोगैस और पर्यावरण की दृष्टि से अनुकूल यंत्रें और उपकरणों का उपयोग।

कृषि अवशेषों का पुनर्चक्रणः खेती से प्राप्त होने वाले अपशिष्ट पदार्थो का पुनर्चक्रण कर अन्य कार्यो में इस्तेमाल करना।

परिवार की बुनियादी जरूरतों की आपूर्ति करना: परिवार की भोजन, चारे, आहार, रेशे, ईंधन और उर्वरक जैसी बुनियादी जरूरतों को खेत-खलिहानों से ही टिकाऊ आधार पर अधिकतम सीमा तक पूरा करने के लिये विभिन्न घटकों में समन्वय और सृजन।

सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये पूरे साल आमदनी: बिक्री को ध्यान में रखकर पर्याप्त उत्पादन करना और कृषि से सम्बन्धित मधुमखी पालन, मशरूम की खेती, खेती-खलिहान में ही प्रसंस्करण व मूल्य संवर्धन, आदि गतिविधियाँ संचालित करके परिवार के लिये पूरे साल आमदनी का इन्तजाम करना ताकि परिवार की सामाजिक जरूरतें जैसे, शिक्षा, स्वास्थ्य और विभिन्न सामाजिक गतिविधियाँ सम्पन्न हो सकें।

गाजर की विपुल उत्पादन तकनीकी

डॉ. राहुल कुमार सिंह, डॉ. नरेन्द्र रघुबंशी, श्री प्रकाश सिंह, डॉ. अमितेश कुमार सिंह, एवं डॉ. मनीष पाण्डेय
कृषि विज्ञान केन्द्र, वाराणसी

गाजर एक महत्वपूर्ण जड़ वाली स्वादिष्ट और पौष्टिक सब्जी है। जो ज्यादातर सर्दियों के महीनों के दौरान उपलब्ध होती है। इसकी खेती पूरे भारत में की जाती हैं। गाजर को कच्चा एवं पकाकर दोनों ही तरह से लोग प्रयोग करते है इसके रस में कैरोटिन प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। यह विटामिन और पोषक तत्वों का का बड़ा स्रोत है। गाजर का सेवन करने से शरीर में विटामिन ए, बी, और सी की कमी नही हाती है। महत्वपूर्ण विटामिनों के अलावा, गाजर में फोलेट, लोहा, तांबा, पोटेशियम पाई जाती है। इसकी जड़ें, सब्जी, सलाद, आचार, मुरब्बा और हल्वा आदि बनाने में प्रयोग होती हैं। इसकी पत्तियों को पशुओं और मुर्गीयो को भी खिलाया जाता है। क्योकि इसमें खनिज लवण और विटामिन प्रचुर मात्रा में पाई जाती है। गाजर से कई स्वास्थ्य लाभ हैं। रोजाना इसके सेवन से आंखों की रोशनी बेहतर होती है, इम्यूनिटी बेहतर होती है और कैंसर से बचाव होता है।

जलवायु- वैसे तो गाजर ठंडी जलवायु की फसल है । गाजर के रंग और आकार पर तापक्रम का बहुत असर पड़ता हैं बीज के जमाव ,वं पौधों की बढ़वार हेतु 7.2 से 23.9 डिग्री सेल्सियस तापक्रम तथा अच्छे आकार एवं आकर्षक रंग के लिए तापक्रम 12-20 डिग्री सेल्सियस उपयुक्त रहता है।

भूमि का चुनाव - गाजर की अच्छी पैदावार के लिए गहरी, भुरभुरी, हल्की दोमट भूमि, जिसकी पी एच मान 6.5 से 7.5 तक हो, सर्वोत्तम होती है। भूमि में पानी का निकास अच्छा होना चाहिए ।

भूमि की तैयारी - खेत की तैयारी के लिए, पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल तथा बाद में दो से तीन जुताई देसी हल या कल्टीवेटर से करके पाटा चला कर मिट्टी को भूर-भूरी और समतल कर लेना चाहि, जिससे खेत में सिंचाई सुगमता पूर्वक हो सके।

उन्नतशील किस्में - अच्छे गुणों वाली मोटी, लम्बी, या नारंगी रंग की जड़ो वाली गाजर अच्छी मानी जाती हैं । गाजर के जड़ के बीच का कठोर भाग कम और गूदा अच्छा होना चाहिए ।इसकी किस्मों को मुख्यता दो वर्गो में विभाजित किया गया है ।

1 यूरोपियन किस्में - इसकी औसत उपज 250 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होता है । इन किस्मों को ठण्डे तापक्रम की आवश्यकता होती हैं । यह किस्में गर्मी सहन नहीं कर पाती हैं । इसकी बुवाई का समय अक्टूबर से नवम्बर में करते हैं । इसकी प्रमुख किस्में

नैन्टस -इस किस्म की जडें 12 से 15 लम्बी, बेलनाकार, नांरगी रंग भाग मुलायम, मीठा और सुवासयुक्त तथा 110 से 112 दिन में तैयार होती है । उपज 100 से 125 क्विंटल प्रति हेक्टेअर होती है ।

पूसा यमदाग्नि- इस किस्म की जडें 12 से 15 लम्बी तथा उपज 150 से 200 क्विंटल प्रति हेक्टेयेर होती है ।

अन्य प्रजातियां

चैन्टने, जेनो, पूसा नयनज्योति आदि है ।

2 एशियाई किस्में - यह किस्में अधिक तापमान सहन कर लेती हैं । जो इस प्रकार है ।

पूसा केसर

यह लाल रंग की, पत्तियाँ छोटी एवं जड़ें लम्बी, बीच का भाग संकरा तथा कैरोटीन भरपूर मात्रा 38 मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम खाद्य भाग में पाया जाता हैं । फसल 90 से 110 दिन में तैयार हो जाती है. उपज 300 से 350 क्विंटल प्रति हेक्टेअर होती है ।

पूसा मेघाली

इस किस्म में कैरोटीन भरपूर मात्रा में पाया जाते हैं । यह किस्म बीज उत्पादन करने के लिए, अच्छी होती है इस किस्म को तैयार होने में 100 से 110 दिन का समय लगता है. एक हेक्टेयर में इसकी उपज 300 क्विंटल तक होती है ।

अन्य प्रजातियां

पूसा वसुदा, गाजर 29, आदि ।

बीज की मात्रा - सामान्य गाजर की खेती हेतु बीज दर 6 से 8 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर रखनी चाहिए ।

बीजोपचार - फसल को फफूंद जनित रोग से बचाने हेतु बीज को बोने से पहले थिरम या ववास्टीन 2.5 ग्राम दवा प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित कर के बोना चाहिए।

बोने का समय - गाजर की बुवाई का समय इस बात पर निर्भर करता हैकि उसकी कौन सी किस्म उगा रहे हैं ।यदि एशियाई किस्म उगा रहे है तो उसकी बुवाई अगस्त से अक्टूबर प्रथम सप्ताह तक करते हैं। जब कि यूरोपियन किस्म को अक्टूबर तथा नवम्बर में करते हैं।

बोने की विधि- इसकी बुवाई समतल क्यारियो या डौलियो पर की जाती है। इसकी अधिक उपज प्राप्त करने के लिए इसे डौलियो पर उगाते है।

बीज की बुवाई- बीज की बुवाई के लि, कतार से कतार की दूरी 30×30 सेन्टीमीटर तथा पौधे से पौधे की दूरी 7.5×7.5 सेंटीमीटर रखते हैं। बीजोँ को बोते समय उन्हे 0.5 से 1 सेंटीमीटर गहराई मे बोना चाहिये ।

खाद एवं उर्वरक - गाजर के पैदावार में खाद एवं उर्वरक का अच्छा प्रभाव पड़ता है। मृदा जाँच के उपरान्त इनका उपयोग करना लाभप्रद रहता है । समान्यता गाजर की भरपूर उपज लेने के लिए उसमें अन्तिम जुताई से 2 सप्ताह पहले 30 टन गोबर की खाद प्रति हैक्टेयर तथा अन्तिम जुताई के समय 250 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट, 300 किलोग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश, 125 किलोग्राम अमोनियम नाइट्रेट, तथा बुवाई के 40 दिन बाद 50 किलोग्राम यूरिया देना चाहिए ।

सिचाई एवं जल निकास - बीज बोने के उपरान्त डौलियो को नम रखना आवश्यक होता है। जब तक की बीज का अंकुरण न हो जाय मुख्यता गाजर की पत्तिया मुरझाने से पूर्व 8 -10 दिन के अन्तराल पर सिचाई करना चाहिए अपर्याप्त नमी कि दशा में उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । अधिक जल भराव भी गाजर की फसल के लिए हानिकारक हो सकती है । अतः खेत में आवश्यकता से अधिक पानी नहीं देना चाहिए ।

फसल सुरक्षा -

1. खरपतवार नियंत्रण - गाजर के साथ उगे खरपतवार का नियंत्रण करना आवश्यक होता है। क्योकि इसका फसल पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः रोकथाम करना आवश्यक है। इसके नियंत्रण के लिए

आवश्यकतानुसार निकाई गुडाई करे । या खरपतवार नाशी का प्रयोग करे।

जैसे - स्टाम्प की 3.5 लीटर मात्रा को 1000 लीटर पानी में घोलकर अंकुरण से पूर्व छिड़काव करना चाहिए।

2. कीट नियंत्रण - गाजर में मुख्य रूप से पत्तीफुदका तथा कटवर्म कीट का प्रकोप ज्यादा होता है। अतः पत्तीफुदका के नियंत्रण के लिए 0.05 प्रतिशत मोनोक्रोटोफास का छिड़काव करना चाहिए। तथा कटवर्म के नियंत्रण के लिए 0.1 प्रतिशत क्लोरोपाइरीफास के घोल का छिड़काव करना चाहिए ।

3. रोग एवं उपचार – गाजर कि फसल से अच्छी पैदावार लेने के लिए रोग कि पहचान एवं प्रभावी नियंत्रण अत्यंत आवश्यक है । प्रमुख रोग एवं उनके उपचार विधि निम्लिखित हैं-

(i) **आर्दविगलन रोग -** गाजर में मुख्यता आर्दविगलन रोग का प्रकोप ज्यादा देखने को मिलता है। जो पिथियम अफनीडरमैटम नामक फफूँदी से होता है। जिससे बीज अंकुरित होने से पहले भूमि में सड जाता है। या अंकुरण के बाद पौधा सड कर गिर जाता है। इसके नियंत्रण के लिए बीज बोने से पूर्व कैप्टान 3 ग्राम प्रति किलोग्राम से बीज को उपचारित करना चाहिए।

(ii) **जीवाणुज मृदुविगलन -** इस रोग में इर्वीनिया कैरोटोवोरा नामक जीवाणु गाजर के गूदे पर आक्रमण करता है जिससे जड़े सड जाती है। इसके नियंत्रण के लिए खेत में जल निकास की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। तथा रोग का लक्षण दिखने पर नाइट्रोजनधारी उर्वरक का प्रयोग न करे।

(iii) **कैरेट यलोज** - यह रोग विषाणु से होता है। इसका प्रकोप पत्तियों पर होता है जिससे पत्तियों का मध्य भाग चितकबरा हो जाता है तथा पत्तिया पीली पड कर मुड जाती है। जिससे जड़ो का आकार छोटा रह जाता है। इसके नियंत्रण के लिए 0.02 प्रतिशत मैलाथियान का छिड़काव करना चाहिए।

गाजर की खुदाई - इसकी खुदाई उसकी उगाई गयी किस्मो पर निर्भर करता है। वैसे जब गाजर की जड़ो के ऊपरी सिरे 2.5 सेमील व्यास के हो जाएँ तब खुदाई कर लेना चाहिए।

गाजर की उपज - गाजर की उपज कई बातो पर निर्भर करता है। जैसे -भूमि की उर्वरा शक्ति, उगाई गयी किस्म, बोने की विधि और फसल की देखभाल पर निर्भर करती है। आमतौर पर गाजर की उपज 250 से 300 क्विंटल प्रति हैक्टेयर मिल जाता है ।

भंडारणः- सामान्य दशा में गाजर को 2 से 3 दिन से अधिक भंडारित नहीं किया जा सकता है, परन्तु छिद्रित पॉलीथीन में रखकर इसे कम से कम लगभग 2 सप्ताह तक भडारित किया जा सकता है, जबकि गाजर शीतगृह में 0 से 4.4 डिग्री सेल्सियस तापक्रम व 93 से 98 प्रतिशत आद्रता पर लम्बे समय के लिये (4 से 6 माह) तक आसानी से परिरक्षित कर सकते है ।

मिर्च उत्पादन तकनीकी

जितेन्द्र कुमार कुशवाहा, चन्दन सिंह एवं ज्ञानदीप गुप्ता

आ.न.दे.कृ.वि.वि. अयोध्या.-कृषि विज्ञान केन्द्र, मऊ

मिर्च की व्यावसायिक खेती करने से अधिक लाभ कमाया जा सकता है। प्रायः सभी लोग कम या ज्यादा मात्रा में मिर्च का प्रयोग अवश्य करते हैं। अधिक तीखी (चरपरी) हरी या लाल मिर्च मसालों के रुप में, तथा मध्यम चरपरी लाल मोटी मिर्च अचार बनाने में प्रयोग की जाती है।

उन्नतशील किस्में

मुक्त परागित

एल0सी0ए0-235- इस किस्म के पौधे सघन, छोटी-छोटी गांठों वाले छातानुमाकार के होते हैं। पत्तियां छोटी, फल 5-6 सेमी0 लम्बे, नुकीले, गहरे हरे रंग के, काफी चरपरे होते हैं। हरी सब्जियों के साथ प्रयोग करने के लिए यह उपयुक्त किस्म है। अचार बनाने व निर्यात के लिए भी यह उपयुक्त किस्म है। इसके हरे फलों की पैदावार 100-150 कुन्तल तथा सूखे फलों की 40 कुन्तल/हेक्टेयर है।

पूसा ज्वाला- इस किस्म के पौधे, झाड़ीनुमा, पत्तियां तथा फल हल्के हरे रंग के, फल 10-12 सेमी0 लम्बे पतले तथा अधिक चरपरे होते हैं। फल पकने के बाद लाल रंग के जो सूखने पर टेढ़े-मेढ़े हो जाते हैं। इसके हरे फलों की पैदावार लगभग 150 कु0/हे0 है।

पूसा सदाबहार- इसके पौधे सीधे 60-80 सेमी0 लम्बी, पत्तियां सामान्य किस्मों की अपेक्षा अधिक लम्बी व चौड़ी होती हैं। फल 6-14 के गुच्छो में लगते हैं तथा फल का निचला हिस्सा ऊपर की तरफ मुड़ा होता है। फल आकार में 6-8 सेमी0 लम्बे तथा 3.0 से 4.0 मिमी0 मोटाई के होते हैं। इस किस्म की मुख्य विशेषता यह है कि एक बार पौध लगा देने पर 2-3 वर्षो तक फल मिलते रहते हैं।

जवाहर मिर्च-218- इसके फलों में अधिक चरपराहट होती है। फल 10-12 सेमी0 लम्बे होते हैं। यह मसाले के लिए उपयुक्त किस्म है।

के0ए0-2- इस किस्म के पौधे छोटे होते हैं तथा फल नीचे की तरफ लगते हैं। हरे फल के उत्पादन के लिए यह अच्छी किस्म है। इस किस्म में फलों की तुड़ाई 3-4 बार में समाप्त हो जाती है। हरे फल का उत्पादन लगभग 200 कु0/हेक्टेयर हाता है। इसकी फसल के बाद गेहूँ आसानी से बोया जा सकता है। इस किस्म के पौधे की रोपाई 45x45 सेमी0 पर करनी चाहिए।

संकर किस्में

काशी अगेती- यह किस्म हरे फल के लिए उपयुक्त है। हरे फल का उत्पादन 250-300 कु0/हे0 होता है।

तेजस्वनी- इसकी फलियां मध्यम आकार की तथा गहरे हरे रंग की होती है। यह एक अच्छी उपज देने वाली किस्म है।

भूमि और भूमि की तैयारी- इसकी अधिक उपज के लिए बलुई दोमट या दोमट भूमि अच्छी पायी गयी है। ऐसी मिट्टी जिसका पी0एच0 मान 6 से 7.5 के बीच हो, खेती के लिए उपयुक्त होती है। खेत की दो-तीन जुताई करके पाटा लगा देते हैं ताकि खेत की मिट्टी भुरभुरी हो जाय।

बुवाई का समय- अच्छी पैदावार प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि मिर्च की बुवाई उपयुक्त समय से करें। उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में पौधशाला में बीज की बुवाई का उपयुक्त समय जून-जुलाई तथा रोपण का उचित समय जुलाई-अगस्त है।

बीज की मात्रा- एक हेक्टेयर खेत में मिर्च की खेती के लिए 200-300 ग्राम बीज की आवश्यकता होती है।

पौधशाला में बीज की बुवाई- मिर्च के बीज की सर्वप्रथम पौधशाला में बुवाई करके पौध तैयार कर लेते हैं। तत्पश्चात पौध तैयार होने पर इनका रोपण मुख्य खेत में करते हैं। बीज शैय्या के लिए जीवांशयुक्त मिट्टी काफी उपयुक्त होती है। अतः मिट्टी में गोबर या कम्पोस्ट की खाद डालकर अच्छी प्रकार मिला दें। अच्छी पौध तैयार करने के लिए प्रकृति वर्ग मीटर की दर से 10 ग्राम डाई अमोनियम फास्फेट और 1 किलो सड़ी हुई गोबर की खाद मिला दें। बीजों को ऊँची उठी हुई क्यारियों में डालना उचित होता है। क्यारियां जमीन की सतह से 20-25 सेमी0 उठी हुई होनी चाहिए। क्यारियों की लम्बाई 3 मीटर तथा चौड़ाई 1 मीटर रखते हैं। साधारणतया लम्बाई के लम्बवत या चौड़ाई के समानान्तर 5-6 सेमी0 रखे एव इन्हीं पंक्तियों से बीज की बुवाई करें। बीज बुवाई के बाद क्यारियों को सड़ी हुई गोबर की खाद या पत्ती की खाद (कम्पोस्ट खाद) से ढँक दें जिससे ऊपर की मिट्टी बैठने ने पाये। तत्पश्चात फुहारे से हल्की सिंचाई करें। अब इन क्यारियों को धूप व ठण्ड से बचाने के लिए घास-पूस की छप्पर या सरकण्डे से ढँक दें। जब बीज पूर्णतया जम जाय तो घास-फूस हटा लें तथा आवश्यकतानुसार फुहारे से सिंचाई करते रहें, एक सप्ताह अन्तराल पर बीज शैय्या में पौधे की डायथेन एम-45 या थिरम/मैकोजेब के 0.2% घोल (2 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी) उपचारित करें। लगभग 4 सप्ताह में पौधरोपण योग्य तैयार हो जाती है।

रोपण एवं दूरी- जहां तक हो सके मिर्च के पौधो का रोपण शाम के समय करना चाहिए। साफ मौसम या तेज धूप के समय रोपण करने से अच्छी अपनी वृद्धि नहीं कर पाते। रोपण के बाद पौधों को फुहारों की सहायता से दो-तीन दिनों तक सुबह शाम सिंचाई करें। मिर्च में रोपण के लिए उचित दूरी ऋतुओं और किस्मों के अनुसार अलग-अलग होती है। साधारण तौर पर मिर्च की रोपाई पंक्ति से पंक्ति 45-75 सेमी0 व पौध से पौध 30-45 सेमी0 रखना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक- मिर्च की पैदावार उसमें प्रयुक्त खाद एवं उर्वरकों की मात्रा व किस्म पर निर्भर करती है। अच्छी उपज के लिए 25-30 टन प्रति हेक्टेयर सड़ी गोबर की खाद खेत की तैयारी के समय खेत में मिलाये तथा तत्व के रुप में 100-120 किलोग्राम नाइट्रोजन, 40-60 किग्रा0 फास्फोरस, 40-50 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करना चाहिए। नाइट्रोजन की आधी व फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा रोपण से पहले दें तथा शेष नाइट्रोजन को दो भागों में बांटकर रोपण से 25 से 45 दिनों बाद खड़ी फसल में डाले।

सिंचाई- पौध रोपण के तुरन्त बाद हल्की सिंचाई करना अत्यन्त आवश्यक है। उसके बाद आवश्यकतानुसार सिंचाई करना चाहिए। मिर्च में पानी की मात्रा मिट्टी की किस्म, क्षेत्र में होने वाली वर्षा की मात्रा और उगाई

जाने वाली किस्म पर निर्भर करती है। यदि वर्षा कम हो रही है तो 10-15 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई करनी चाहिए। गर्मी के महीनों में सिंचाई एक सप्ताह के अन्तराल पर करें। ध्यान दें कि वर्षा का पानी खेत में ज्यादा समय तक न रहे अन्यथा पौधे मर जाते हैं।

अंतः सस्य क्रियाएं- सिंचाई करने के बाद मिर्च की खेत में अनेक प्रकार के खरपतवार उग आते हैं। अतः समय-समय पर निकाई करते रहना चाहिए। भूमि में हवा का आवागमन सुचारु रूप से होता रहे इसके लिए सिचाई के बाद हल्की गुड़ाई करके पौधों की जड़ों के पास मिट्टी बढ़ा दें। सिचाई के दौरान यह ध्यान रखें कि पानी जड़ों तक न पहुंचे और पूरी मिट्टी बैठने न पावें। स्टाम्प 1.3 लीटर 100 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर रोपण से पूर्व खेत में प्रयोग करने से खरपतवार नही उगते हैं व अच्छी उपज प्राप्त होती है।

तुड़ाई- हरी मिर्च के लिए तुड़ाई फल लगने के 15-20 दिन बाद कर सकते हैं। परन्तु यदि सूखी लाल मिर्च के लिए तुड़ाई करनी हो तो एक या दो बार हरी मिर्च की तुड़ाई करके मिर्च पौध पर ही पकने के लिए छोड़ दी जाती है। इससे फूल बहुलता से आते हैं और पैदावार भी ज्यादा मिलती है। एक तुड़ाई से दूसरी तुड़ाई का अन्तराल 15-20 दिन का रखते हैं। फलों की तुड़ाई उनके पूर्ण विकसित होने पर ही करनी चाहिए।

एकीकृत कीट प्रबन्धन

थ्रिप्स- इस कीट के शिशु तथा वयस्क दोनों पत्तियों से रस चूसकर नुकसान पहुँचाते हैं। वयस्क कीट का पंख कटा-फटा होता है। प्रौढ़ कीट 1 मी.मी. से कम लम्बा होता है। यह कोमल हल्के पीले भूरे रंग का होता है। एक मादा 50-60 अण्डे देती है। इसके प्रकोप से पत्तियाँ सूख जाती हैं जिसका प्रतिकूल असर फसल की पैदावार पर होता है।

नियंत्रण- मिर्च के बीज को गाऊचो (70 डब्लू. एस.) 2.5 ग्राम प्रति किग्रा० बीज की दर से उपचारित कर पौधशाला में बुवाई करें। मुख्य खेत पर कानफिडोर 200 एस०एल० का 0.3 मि०ली० प्रति लीटर पानी के साथ घोल बनाकर छिड़काव करें। फल लगने से 30 दिन पहले कानफिडोर का प्रयोग बन्द कर देना चाहिए। रोगार 1.5 मि०ली० प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर 15 दिन के अन्तराल पर छिड़कने से भी थ्रिप्स का नियंत्रण सम्भव है। इस दवा का प्रयोग फूल लगने के लगभग 10 दिन पहले बन्द कर देना चहिए।

पीली माइट- यह पीले रंग की छोटी माइट है इसकी पीठ पर सफेद धारियाँ होती है यह आकार में इतनी छोटी होती है जो आसानी से दिखाई नहीं देती। इसके प्रकोप होने पर पर्ण कुंचन रोग (लीफ कर्ल) की तरह पत्तों में सिकुड़ाव आ जाता है। इस कीट के शिशु तथा प्रौढ़ दोनों ही पत्तियों का रस चूसकर हानि पहुॅचाते हैं। इसके अत्यधिक प्रकोप होने पर पौधे की बढ़वार एकदम रूक जाती है और फूलने-फलने की क्षमता प्रायः समाप्त हो जाती है।

नियंत्रण- डायकोफाल 18.5 ई.सी. 2.5 मि०ली० को प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर या सल्फर धूल (10% धूल) का 20-45 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से 15 दिन के अन्तराल पर बुरकाव प्रभावकारी पाया जाता है।

एकीकृत रोग प्रबन्धन

शीर्षमरण रोग (डाइबैक) एवं फल सड़न

लक्षण- इस रोग में पौधे के ऊपरी भाग सूखना प्रारम्भ होता है और नीचे तक सूखता जाता है। प्रारम्भिक

अवस्था में यह टहनियाँ गीली होती है और इस पर रोएंदार कवक दिखाई देती हैं। रोग ग्रसित पौधों के फल सड़ने लगते हैं। लाल फलों पर इस रोग का प्रकोप अधिक होता है।

प्रबन्धन- इसकी बचाव के लिए कार्बेन्डाजिम 2.5 ग्राम दवा प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करके बोयें। क्षतिग्रस्त टहनी को सुबह के समय कुछ नीचे से काटकर इकट्ठा कर लें एवं जला दें। डाइकोल्टान (2 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी) तथा कार्बेन्डाजिम 0.1% (1 ग्राम/लीटर पानी) घोल का छिड़काव बारी-बारी करें।

भिण्डी की वैज्ञानिक खेती

जितेन्द्र कुमार कुशवाहा, चन्दन सिंह एवं लाल पंकज सिंह
आ.न.दे.कृ.वि.वि.-कृषि विज्ञान केन्द्र, मऊ

भिण्डी भारत की एक लोकप्रिय सब्जी है जो देश के लगभग सभी भागों में उगायी जाती है । भिण्डी कच्चे हरे फल के लिए ही नहीं बल्कि इसकी जड़ और तना गुड़ और शक्कर साफ करने में भी प्रयोग किया जाता है इस समय निर्यात की जाने वाली सब्जियों में लगभग 60% भिण्डी निर्यात की जाती है । भिण्डी की अच्छी उपज के लिए उन्नतशील प्रजातियों की वैज्ञानिक तरीके से खेती करनी चाहिए ।

उन्नतशील किस्में

वी0आर0ओ0-6- यह प्रजाति परत सिरा मोजैक एवं प्रारम्भिक पत्ती मरोण विषाणु रोग से अवरोधी है । इसमें फल 34-40 दिनों में चौथे से पाचवें गाठ़ों पर आ जाता है । इसकी पैदावार गर्मी के दिनों में 135 कुन्तल तथा बरसात की फसल में 180 कुन्तल प्रति हेक्टेयर तक होती है ।

वी0आर0ओ0-5- यह भिण्डी की बौनी प्रजाति है । इसकी बढ़वार 60 से 70 सेमी0 तक सीमित है । इससे फूल 40 दिन में चौथे गाँठ पर आ जाते हैं । इसमें गाँठे कम दूरी पर आती है जिससे वह किस्म बौनी होती है एवं अच्छी उपज देती है । इसकी पैदावार बरसात की फसल में 150 कुन्तल व गर्मी में 120 कु0/हे0 तक होती है । यह किस्म भी पीत सिरा मोजैक व प्रारम्भिक पत्ती मरोण विषाणु रोग से मुक्त है ।

परभनी क्रान्ति- यह किस्म पीत सिरा मोजैक विषाणु के प्रति सहिष्णु है । यह बुआई के 50-55 दिनों में तुड़ाई योग्य हो जाती है । फलियाँ पाँच धारियों वाली, मुलायम, चिकनी 12-14 सेमी0 लम्बी होती है । इसकी पैदावार 58-90 कुन्तल/हेक्टेयर होती है ।

आई0आई0वी0आर0-90- यह भिण्डी की सात धारी किस्म है । पौधों में फूल बोने के 42 दिन बाद में आ जाते हैं । यह प्रजाति भी पीत सिरा मोजैक व प्रारम्भिक पत्ती मरोण विषाणु से अवरोधी है । इसकी पैदावार बरसात के दिनों में लगभग 150 कु0/हे0 होता है ।

काशी लालिमा- काशी लालिमा को विकसित करने में 8-10 वर्षो की कड़ी मेहनत वाराणसी के भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकों ने की है । काशी लालिमा एक हेक्टेयर में 130 से 150 कुन्तल तक उपज देती है ।

जलवायु- भिण्डी के लिए लम्बे गर्म मौसम की आवश्यकता पड़ती है । इसकी खेती के लिए औसत तापक्रम 25-30 डिग्री सेन्टीग्रेट उपयुक्त पाया गया है । भिण्डी की बुआई औसतन 20 डिग्री सेन्टीग्रेट से अधिक तापमान होने पर करनी चाहिए ।

भूमि और भूमि की तैयारी- इसकी खेती जीवांशयुक्त गहरी दोमट या बलुई दोमट मिट्टी में सफलतापूर्वक की जा सकती है । इसकी अच्छी खेती के लिए 6-7 पी0एच0 मान वाली मिट्टी सर्वोत्तम पायी गयी है । यदि खेत में नमी की कमी हो तो पलेवा कर खेत की 3-4 जुताईयां करके पाटा लगा देना चाहिए ।

बुआई का समय- बरसात की फसल जून-जुलाई और ग्रीष्म ऋतु की फसल की बुआई फरवरी-मार्च में करते हैं । उत्तर भारत में व्यावसायिक दृष्टि से अगेती फसल का काफी महत्व है । बहुत अगेती फसल की बुआई का समय फरवरी माह का औसत तापक्रम 18 डिग्री सेन्टीग्रेट से कम होने पर जमने के बाद या तो बीज सड़ जाता है या बढ़वार रुक जाती है । यद्यपि इसकी बुआई 15 फरवरी से जुलाई तक सिंचाई की सुविधा होने पर किसी भी समय कर सकते हैं ।

बीज की मात्रा- बीज की मात्रा बोने के समय व दूरी पर निर्भर करती है । खरीफ की खेती के लिए 8-10 किग्रा० तथा ग्रीष्मकालीन फसल के लिए 12-15 किग्रा० बीज की प्रति हेक्टेयर आवश्यकता होती है । अगेती फसल, फरवरी के प्रथम सप्ताह में लगाने पर 15-20 किग्रा०/हेक्टेयर बीज की आवश्यकता पड़ती है ।

पौध से पौध एवं कतार से कतार की दूरी

मौसम	दूरी (सेमी०)	
	कतार	पौध
ग्रीष्मकालीन फसल (अगेती)	30	20
ग्रीष्मकालीन फसल (सामान्य)	30	25
वर्षाकालीन फसल	60	30

बुआई- भिण्डी की बुआई समतल क्यारियों एवं मेड़ों पर करते हैं । जहां मिट्टी भारी तथा जल निकास का अभाव हो वहां बुआई मेड़ों पर करते हैं । गर्मी के दिनों में अगेती फसल लेने के लिए बीज को 24 घण्टे तक पानी में भिगोकर एवं छाया में थोड़ी देर सुखाकर बुआई करनी चाहिए । बुआई के पूर्व कैप्टाफ या थिरम नामक कवकनाशी दवा से (2.5-3 ग्राम दवा/किग्रा० बीज) से उपचारित कर लेना चाहिए । बीज की बुआई 2.5 से 3.0 सेमी की गहराई पर करते हैं ।

खाद एवं उर्वरक- भिण्डी की अच्छी पैदावार के लिए भूमि में 20-25 टन सड़ी गोबर की खाद, 100 किग्रा० नाइट्रोजन, 50 किग्रा० फास्फोरस और 50 किग्रा० पोटाश/हेक्टयर की दर से देना चाहिए । गोबर की खाद को तैयारी के समय अच्छी प्रकार मिट्टी में मिला लें । नाइट्रोजन की एक तिहाई मात्रा तथा फास्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा बुआई के पूर्व मिट्टी में मिला लेना चाहिए । नाइट्रोजन की शेष मात्रा में बुआई के 30-50 दिन बाद फसल में टापड्रेसिंग के रुप में दें ।

सिंचाई- यदि भूमि में अंकुरण के समय पर्याप्त नमी न हो तो बुआई पलेवा देकर करना चाहिए । अच्छी फसल प्राप्त करने के लिए आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहे । सिंचाई मार्च में 10-12 दिन, अप्रैल में 7-8 दिन और मई-जून में 4-5 दिन के अन्तर पर करें । बरसात में यदि वर्षा होती रहती है तो सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती । वर्षा ऋतु में भिण्डी की फसल में पानी के निकास का उचित प्रबन्धन होना चाहिए ।

अंतः सस्य क्रियायें- भिण्डी की पौधे को विकास एवं बढ़वार पर खरपतवार प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं ।

खरपतवार के नियन्त्रण के लिये डयुअल (मेटोलेक्लोर-50 ई0सी0) की 2 लीटर मात्रा या स्टाम्प (पेन्डिमेथलीन 30 ई0सी0) की 3.3 लीटर दवा 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से बुआई के 24 घण्टे के अन्दर छिड़काव करने से खरपतवार नष्ट हो जाते हैं तथा पैदावार अच्छी प्राप्त होती है । तत्पश्चात आवश्यकतानुसार निराई गुणाई करते रहना चाहिए ।

फलों की तुड़ाई और उपज- भिण्डी की फलों की तुड़ाई नरम अवस्था में करनी चाहिए क्योंकि कड़ा होने पर उसमें रेशे की मात्रा बढ़ जाती है । फलों की तुड़ाई फूल खिलने से 4-6 दिन बाद की जाती है । उचित देख-रेख, उन्नतशील किस्म, खाद और उर्वरकों के उचित प्रयोग से प्रति हेक्टेयर गर्मी के दिनों में 80-100 तथा बरसात में 120-150 कुन्तल उपज प्राप्त कर सकते हैं । निर्यात के लिए फली 6-8 सेमी0 लम्बी व सीधी और फूल आने (परागण) के चौथे दिन ही तुड़ाई कर देनी चाहिए ।

प्रमुख कीट

तना एवं फल छेदक कीट- सूड़िया फलों में छेद करती हैं जिससे प्रभावित फल सब्जी योग्य नही रहते हैं व ग्रसित फल सही आकार नही ले पाती है और टेढ़ा हो जाता है । इसकी सूडियां तने के शीर्ष भाग को नुकसान करती हैं, शीर्ष मुरझा जाता है जिससे पौधे की बढ़वार रुक जाती है । इसके नियन्त्रण के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जाते हैं ।

(1) 4% नीम की गिरी व 1 मिली0 इमिडाक्लोप्रिड पानी के साथ मिलाकर फूल लगते समय छिडकाव करना चाहिए ।

(2) अण्डा परजीवी ट्राइकोग्रामा 540,000 को फल लगते समय साप्ताहिक अन्तराल पर खेत में छोड़ने से फल वेधक कीट का प्रकोप कम पाया जाता है ।

(3) साइपरमेथ्रीम 10 ई0सी0 का 0.5 मिली0/लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करने से इस कीट का नियन्त्रण सम्भव है ।

सावधानियाँ- रासायनिक दवाओं के उपयोग के साथ अण्डा परजीवी कीटों को खेत में नहीं छोड़ना चाहिए । लाल माईट एवं जैसिड के आक्रमण होने पर साईपरमेर्थिन का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए ।

हरा फुदका (जैसिड)- हरे रंग के छोटे कीट के शिशु व प्रौढ़ दोनों भिण्डी की पत्तियों के निचले हिस्से में रहते हैं और रस चूसते हैं । जिसके फलस्वरूप पत्ती के किनारे पीली होकर सिकुड़ते हैं तथा पत्ती प्यालानुमा आकार बनाती है धीरे-धीरे सूख जाती है । इसके नियन्त्रण के लिए निम्न उपाय करना चाहिए ।

(1) बीज को गाउचो (2.5-3 ग्रा0/किलो बीज) से उपचारित करके बोने से कीट का प्रकोप 40-45 दिनों तक नही होती है ।

(2) कानफिडोर का 0.3 मिली0/लीटर पानी में घोल बनाकर फसल पर छिड़कने से 30 दिन तक इस कीट का प्रकोप नही होता है ।

(3) 4% नीम गिरी एवं 0.5 मिली0 इन्डोट्रान (चिपकने वाला पदार्थ) प्रति लीटर पानी के साथ मिलाकर छिड़कने से फुदका का प्रकोप कम हो जाता है ।

भिण्डी की लाल माइट- गर्मी वाली भिण्डी में यह बहुत हानिकारक होती है । शिशु तथा प्रौढ़ पत्तियों के निचली सतह पर रस चूसते हैं और वही सिल्कनुमा जाला से ढँके रहते हैं । इनके रस चूसने से पत्तियो की

ऊपरी सतह पर पीली चित्तियां उभर आती है और धीरे-धीरे पत्तियां लाल होकर सूख जाती ह ।

(1) इसके नियन्त्रण के लिए खेत में गर्मी के मौसम में हमेशा नमी बनाये रखना चाहिए ।

(2) कर्नल ए (डायकोफाल 18.5 ई0सी0) का 2.5 मिली0/लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए ।

(3) क्वीनालफास 30 ई0सी0 का 1मिली0/लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करने से माईट का नियन्त्रण किया जा सकता है ।

पत्ती काटने वाला कीट- पिछले कुछ सालों से भिण्डी में इसका प्रकोप बढ़ता जा रहा है । इस कीड़े की सुडियाँ पत्ती के दोनों सतहों पर पायी जाती हैं, लेकिन छोटी सूडी पत्तियों की निचली सतह पर व बड़ी सूडी ऊपरी सतह पर रहकर पत्तियों में छेद करती हैं । इससे बचाव के लिए निम्नलिखित में से कोई एक उपाय अपना सकते हैं ।

(1) साइपरमेथ्रिन 0.5 मिली या पालीट्रिन सी नामक दवा 0.7 मिली0/लीटर पानी में मिलाकर (बरसात वाली भिण्डी में स्टिकर टीपोल 0.5 मिली) मिलाकर 15 दिनो के अन्तराल पर 2-3 बार छिड़काव करना चाहिए ।

प्रमुख रोग

पीत शिरा मोजैक- यह एक विषाणु रोग है जो सफेद मक्खी के द्वारा फैलता है । इसके प्रकोप से पौधों की बढ़ोतरी रुक जाती है एवं पत्तियों की नसें पीली पड़ जाती है । जब तने और फलों के रंग पीला पड़ जाये तो समझे कि रोग का प्रकोप ज्यादा है । इसके बचाव के लिए निम्नलिखित उपाय करें ।

(1) इस रोग से अवरोधी किस्मों का प्रयोग करें ।

(2) बीज को इमिडाक्लोप्रिड (2.5 ग्राम प्रति किग्रा0 बीज) से शोधित करके लगाना चाहिए ।

(3) मेटासिस्टाक्स 1.5 मिली0/लीटर पानी में घोल कर 15 दिन के अन्तराल पर 3 बार छिड़काव करें ।

भिण्डी का पत्ती मरोड विषाणु रोग- इस रोग से पत्ती का डठंल अंग्रेजी के एस आकार की हो जाती है । पत्ती की नसों में मोटी-मोटी गांठे उभार लिये हुए बन जाती है । इसके प्रकोप से ग्रसित पत्ती को सूर्य के प्रकाश में देखने पर नसों के बीच मोटी हरे रंग की गांठे स्पष्ट दिखाई देती हैं । इसकी पत्ती कुछ मोटी व मोमी हो जाती है । इससे प्रभावित पौधे सामान्य से कुछ ज्यादा ही हरा दिखायी देते है एवं पौधे में फूल नहीं आते हैं । यदि फूल आ भी जाते है और फली बन जाती है तो उसमें बीज नहीं बनता है । पित शिरा मोजैक विषाणु रोग की रोकथाम के लिए उसे फैलाने वाले वाहक (सफेद मक्खी) के नियन्त्रण हेतु दिये गये सुझाव निर्देश का पालन करें ।

सूखा व जड़ गलन रोग- यह जमीन से उपस्थित फफूंद से फैलता है । फसल किसी भी अवस्था में प्रभावित हो जाती है । शुरुआत में पौधे पीले दिखायी देते हैं तथा बाद में सूख जाते हैं । यह दो प्रकार के फफूंदों से होता है । इसके नियन्त्रण के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जाते हैं ।

(1) फसल चक्र का प्रयोग करके इसको कुछ हद तक रोका जा सकता है ।

(2) बीज को 0.3% थिरम या कैप्टान 2.5 ग्राम/किग्रा0 की दर से उपचारित करके बुआई करना चाहिए ।

(3) गर्म की फसल को समय से सिंचाई करते रहना चाहिए ।

(4) बरसात में जल निकास का उचित प्रबन्ध करना चाहिए ।

काला धब्बा- इसका प्रभाव बरसात की फसल में सितम्बर के अन्तिम सप्ताह से शुरु होता है एवं कम तापक्रम व अधिक आद्रा के साथ बढ़ता जाता है । इसके बचाव के लिए ट्राइएडिमीफोन या बिट्रेटीनाल (0.5) ग्राम अथवा थायोफनेट मिथाइल या कार्बेन्डाजिम 1 ग्राम/लीटर पानी में घोलकर 8-10 दिन के अन्तराल पर तीन बार छिड़काव करें ।

चूर्णी फफूंद रोग- इसके प्रभाव से पत्तियों पर गहरे भूरे रंग का चूर्ण बन जाता है जिससे बाद में पत्तियां सिकुड कर सूख जाती है । यह सूखे मौसम व तापक्रम कम होने पर काफी तेजी से फैलता है । इससे बचाव

के लिए बाविस्टीन 0.1% या घुलनषील गंधक 0.3% छिड़काव करना चाहिए ।

हल्दी के औषधीय गुण

डॉ.राहुल कुमार सिंह, डॉ.नरेन्द्र रघुबंशी, डॉ.नवीन कुमार सिंह एवं डॉ.प्रतीक्षा सिंह
कृषि विज्ञान केन्द्र, वाराणसी

भारतवासियों की सम्यक आहार व्यवस्था में हल्दी का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। इसका उपयोग दाल, सब्जी, मांस, मछली, आचार, मक्खन, पेय पदर्थो, फलों के जूस, केक एवं जेली में सुगन्ध, रंग, औषधीय एवं पोषकीय दृष्टि से किया जाता है। हल्दी पाउडर को अन्य मसालों के साथ में भी मिला कर उपयोग किया जाता है। हल्दी का सुगन्धशील तेल भोजन में स्वाद बढ़ाने एवं पाचन में सुपाच्य होने के गुणों के कारण एक पाचक की तरह कार्य करता है। अपनी रोगाणु नाशक गुण के कारण इसका उपयोग संरक्षण में करते हैं। हल्दी का कृमिनाशक गुण एवं पीलापन इसमें उपस्थित करक्यूमिन तत्व के कारण होता है। पुराने समय में हल्दी का बहुतायत उपयोग ऊन, रेशम, एवं सूत को पीला रंग प्रदान करने के लिए करते थे। इसका प्रयोग अब सूत को रंगने में करते हैं। हल्दी का प्रयोग औषधालय में रंग द्रव्य में करते हैं।
हल्दी में बहुत से औषधीय गुण है, जिसका प्रयोग सामान्य रोगों से बचाव में करते हैं, जो कि निम्नवत हैः-

1. **सर्दी एवं ठण्डीः** हल्दी अपने रोगाणुनाशक गुण के कारण पुरानी खांसी, ठण्डी एवं गले के खरास में इलाज के लिए बहुत असरकारक है। आधा चम्मच हल्दी का रस एवं उसी मात्रा में शहद मिलाकर सेवन करने से इस समस्या से निदान पाया जा सकता है।
2. **त्वचा सम्बंधी विकारः** हल्दी त्वचा सम्बन्धी विकार जैसे दाद-खाज, खुजली, के उपचार में बहुत ही असरकारक होता है। इस अवस्था में कच्ची हल्दी के रस को प्रभावित अंग पर बाहर से लगाते हैं। चेचक में हल्दी पाउडर के तिल का तेल एवं नीम की पत्ती का लेप बनाकर लगाते हैं।
3. **एनीमियाः** हल्दी में लोहा प्रचुर मात्रा में पाया जाता है, जो कि एनीमिया रोग में बहुत उपयोगी है। एक चम्मच कच्ची हल्दी के रस को शहद में मिलाकर प्रतिदिन सेवन करने से इस रोग को नियंत्रित किया जा सकता है।
4. **अस्थमाः** श्वास नलिकाओं के दमा में हल्दी का उपयोग एक घरेलू उपचार में किया जाता है। एक चम्मच हल्दी के चूर्ण को एक गिलास दूध में मिलाकर दिन में दो बार सेवन करने से अस्थमा रोग में बहुत लाभ मिलता है। इसका गुण और भी बढ़ जाता है, यदि प्रातः काल इसका सेवन खाली पेट किया जाए।
5. **पेंट का केंचुआः** शिशु अवस्था या बाल्यावस्था में प्रायः पेट में केंचुआ पड़ जाता है, जिससे शिशु व लोग खिन्न रहते हैं, एवं भूख नही लगती है। कच्ची हल्दी के रस (10-15 बूंद) में एक चुटकी नमक मिलाकर सुबह खाली पेट लेने से पेट के केंचुए को निकालने में असरकारक माना गया है।
6. **फफोला, छाला व जलने परः** हल्दी के चूर्ण को जले व छाले पर लगाने से प्रभावित जगह जल्दी ठीक होने लगती है। ताजा जले हुए या फफोले पर कुछ भुने हुए हल्दी के जड़ के राख को एक कम

पानी में घोलकर प्रभावित अंग पर लगाते हैं। यह मिश्रण फफोले को जल्द ही पकने एवं फटने में सहायक होता है। हल्दी द्वारा बनाए गए मरहम को घाव, सूजन तथा जलन में लेप के तौर पर उपयोग करने से बहुत लाभ मिलता है।

7. **छंत विकारः** हल्दी के पानी से (5 ग्रा० हल्दी चूर्ण, 2 लौंग, 2 अमरूद की सूखी पत्ती को 200 ग्राम पानी में उबालकर) गरारा करने से दांत के दर्द को दांत के दर्द में रगड़ने से दर्द एवं सूजन दूर हो जाती है।
8. **अन्य उपयोगः** औषधीय गुणों के अलावा हल्दी का उपयोग वर्तमान में विभिन्न सौंदर्य प्रसाधनों, रोगाणुनाशक एवं सौंदर्य क्रीम बनाने में करते हैं। ताजी हल्दी एवं चन्दन के मिश्रण को स्नान से पूर्व त्वचा एवं हाथ पैर पर लगाते है जो कि त्वचा को साफ एवं चेहरे को सुंदर बनाता है। हल्दी की रोगाणुनाशक इलाज में जल्दी असर एवं यौवनावस्था की ज्यादा भयावाह चेहरे की बीमारी, फुंसी (मुंहासा) में ज्यादा असरकारक होता है। हल्दी का उपयोग महिलाएण् त्वचा से अनैच्छिक वाल को हटाने के लिए भी करती हैं। हल्दी को घरेलू, आयुर्वेदिक, यूनानी एवं सिद्ध चिकित्सा पद्धति में प्रमुखता से उपयोग करते हैं। आयुर्वेदिक पद्धति में इसे पेट में गैस (उदर वायु) सूजन में इसका प्रयोग करते हैं। पहले माना जाता था कि हल्दी से ट्यूमर और अर्थराइटिस का ही इलाज किया जा सकता है अथवा हल्दी का सेवन करने वालों में रोग से लड़ने की क्षमता बढ़ जाती है। अब शोध के बाद यह संभावना बढी हैं कि हल्दी में पाये जाने वाले रसायन करक्यूमिन से कैंसर रोधी दवा भी बनाई जा सकती है जो ओसो फैगल कैंसर से लड़ने में कारगर साबित हो सकती है।